चकमक

सितंबर 1991 बाल विज्ञान पत्रिका रु. 4.00

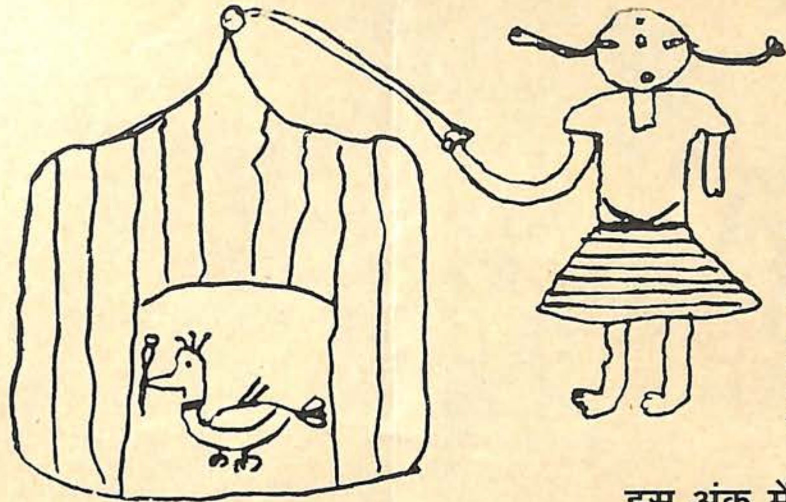




सौम्या शर्मा, छह वर्ष, दिल्ली



रोहित बवीसटाले, तीसरी,
टिकरापारा, बिलासपुर



शोभा, चौथी, उड़िया, दतिया

इस अंक में.....

आवरण पारदर्शी : घनश्याम

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष-7 अंक-3 सितंबर, 1991

संपादक
विनोद रायना

सह-संपादक
राजेश उत्साही
कविता सुरेश

कला
जया विवेक

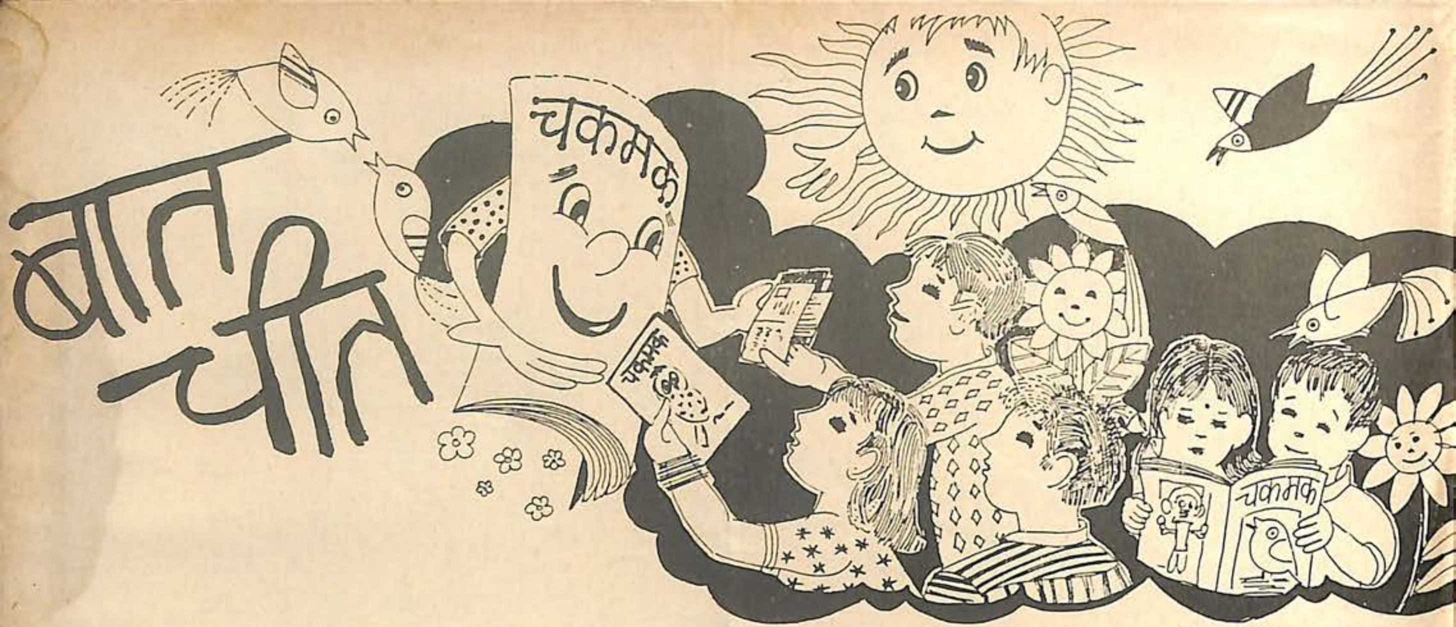
उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

चकमक का चंदा
एक प्रति : चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक : चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ़्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा/रचना भेजने का पता
एकलव्य,
ई-1/208 अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
फोन : 563380

कागज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से।
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।



चित्र : विवेक

इस अंक में तुम रुपए पैसों की कहानी पढ़ोगे... सिक्के कब बने ? नोट कब चले? पैसे के पीछे क्या राज़ है? वग़ैरा....वग़ैरा...।

लेकिन इस कहानी में कहीं भी ग़रीबी-अमीरी का सवाल.. जो आख़िर पैसे से जुड़ा है, नहीं उठाया गया है। शायद तुम यह अंक पढ़ने के बाद यह कहो कि इस जानकारी का क्या फ़ायदा! हमें तो यह बताओ कि किसी के पास अठन्नी-चवन्नी भी नहीं है और कोई लाखों में खेल रहा है- आख़िर क्यों ? असल बात तो यही है। यह पैसे का चक्कर ऐसा है कि जो मेहनत करता है, उसके पास खरचने का थोड़ा या नहीं के बराबर पैसा है। और जो इस मेहनत का फ़ायदा उठाते हैं, उनके पास कार, टेलीविज़न, आलीशान बंगले वग़ैरा के लिए बेहिसाब पैसा है।

इस तरह की ग़ैर बराबरी को लेकर तो चकमक के हर अंक में हम कुछ न कुछ लिखते ही रहते हैं। इस अंक में हमने सोचा कि क्यों न इस बात को सामने लाएं कि आख़िर इन रुपयों-पैसों का आधार क्या है? शायद तुम में से कोई यह सोच रहा हो कि अगर पैसा न होता तो शायद ग़रीबी-अमीरी जैसा कोई झगड़ा भी नहीं होता! क्या यह संभव है?

क्या तुम लेख, कहानी या अपने किसी अन्य तरीक़े से लिखकर हमें यह बता सकते हो कि बिना पैसे की दुनिया कैसी होगी? मज़ा आएगा जानने में! कलम उठाओ और लिख भेजो, अपनी कल्पना, हमें जल्दी से जल्दी।

☐ चकमक



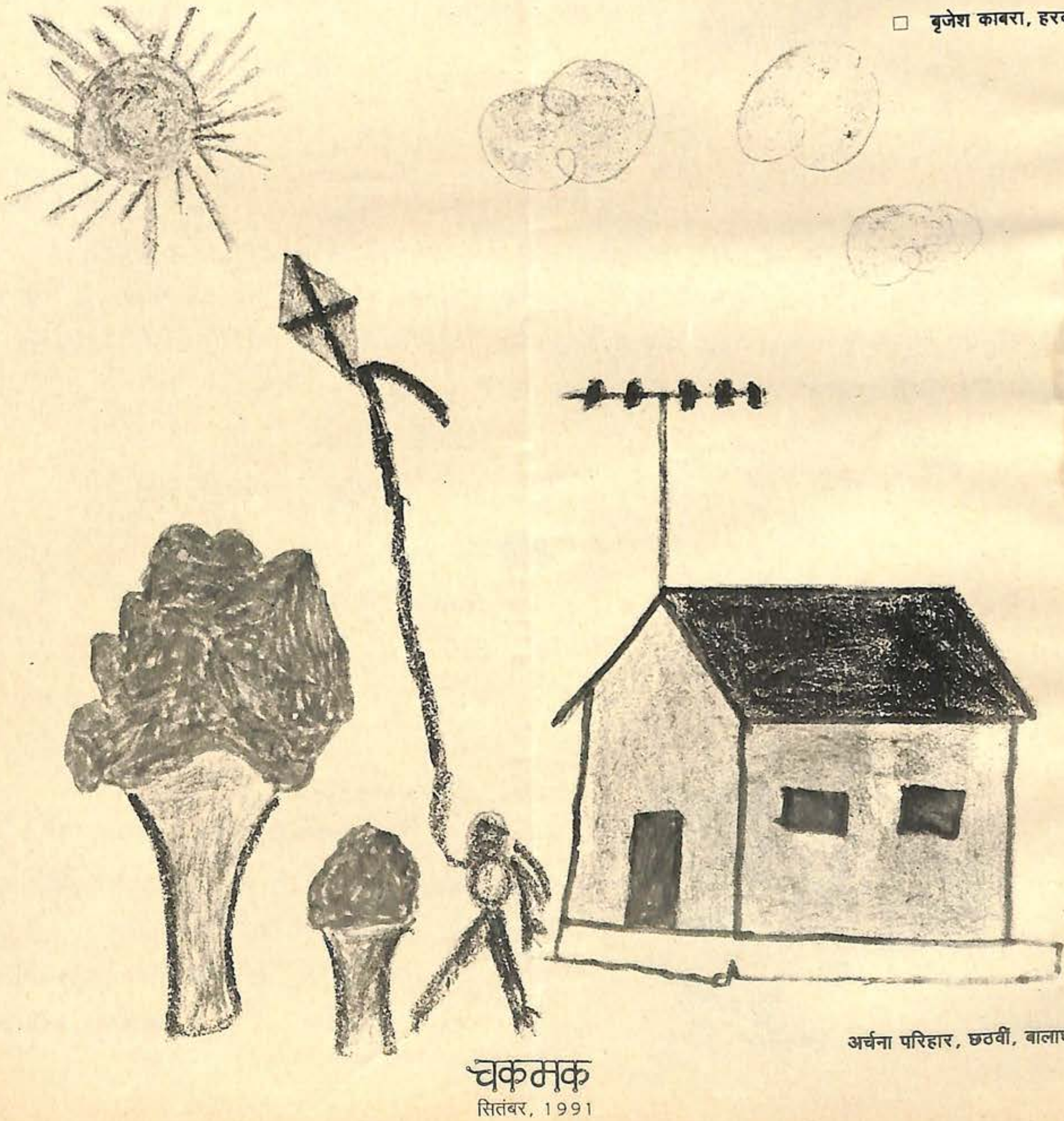
पतंग लूटी, तो पिटे

मैं आकाश में देख रहा था। तभी मेरा ध्यान एक कटी पतंग पर गया। मैं जल्दी से छत पर भागा और पतंग पकड़ ली। ऐसे मुझे पतंग पकड़ने का चस्का लग गया। मैं रोज़ पतंग पकड़ता। दो-तीन बार पिताजी ने मुझे डांट दिया। पर मैंने पिताजी की बात नहीं मानी।

एक दिन तो मैं छत पर से गिर गया, पर मुझे गिरते हुए मेरे अंकल और उनके दोस्त ने देख लिया और झेल लिया। अगर वे नहीं झेलते तो हड्डी-पसली ही टूटती।

अगले दिन फिर एक पतंग पकड़ी और वह पतंग हमारे मोहल्ले के एक पहलवान की थी। उन्होंने घर आकर मुझे पीट दिया। उस दिन मैं घर पर अकेला था।

□ बृजेश काबरा, हरदा



अर्चना परिहार, छठवीं, बालाघाट

हम बहुत खुश हुए!



ईश्वर सिंह, सातवीं, पिपल्यामण्डी

हमारी परीक्षा चल रही थी। मेरे पीछे एक लड़की बैठी थी। वह बहुत चिटिंग करती थी। एक दिन उसकी चिटिंग पकड़ी गई। टीचर ने कहा कि दूसरा पेपर करो और वह पेपर फाड़ दिया। वह लड़की खूब रोई। मुझे उस पर दया आ गई। मैंने उसे चुपके से पेपर पर लिखकर दे दिया। हम दोनों पास हो गए और बहुत खुश हुए।

□ गीता ठाकुर, आठवीं, भोपाल



अशोक शर्मा, पहली, जयपुर

आम के पेड़ पर

हमारे घर के पीछे एक आम का पेड़ था। मैं उसकी छाया में पढ़ रहा था। मेरी मां ने कहा, "बेटा पेड़ पर मत चढ़ना।"

मैंने पूछा, "मां क्यूं?"

मां ने कहा, "आम के पेड़ पर कौवे ने अपना घोंसला बनाया है।"

फिर मैं खेलने लगा। लेकिन मैं यह बात नहीं भूला। अगले दिन मैं पेड़ पर चढ़ गया। कौवा मुझे घोंसले के पास देखकर कांव-कांव करने लगा और चोंच मारने लगा। मैं झट से नीचे उतर गया।

□ दुर्गेश बिल्लौरे, छठवीं, हरदा

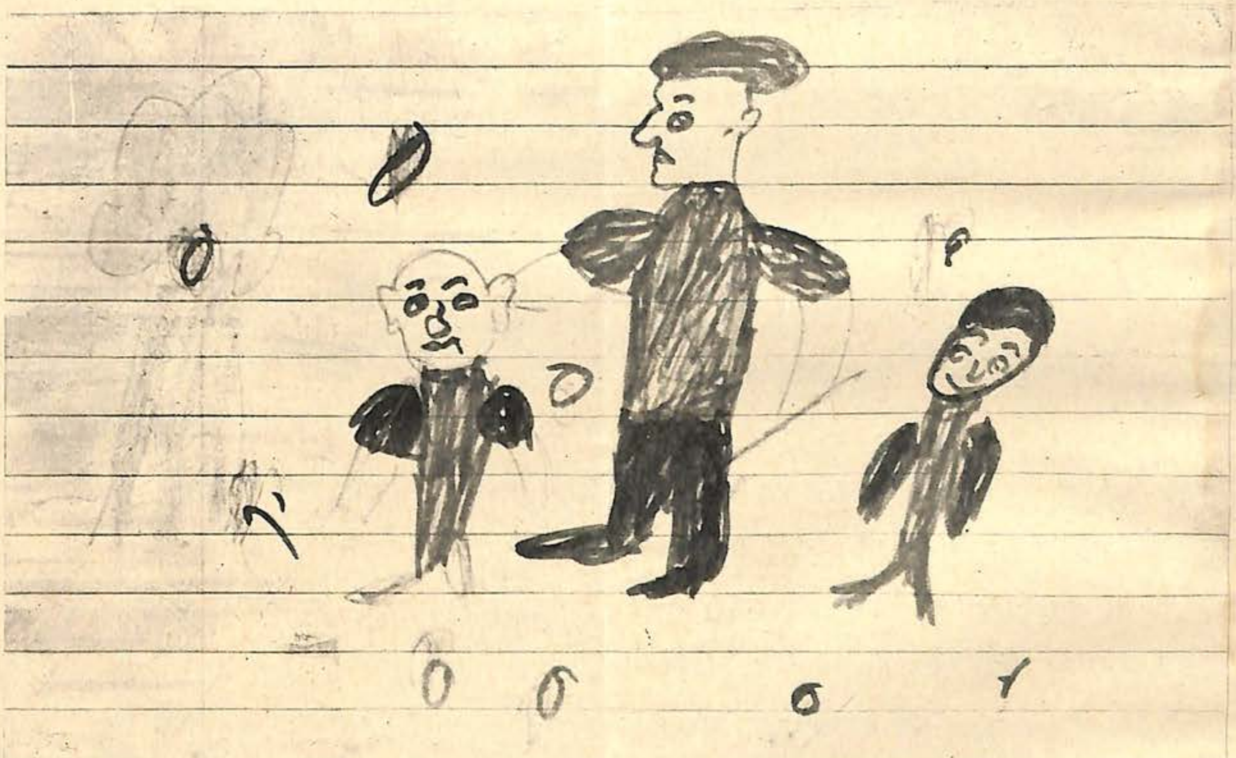


पैर में आई मोच

एक दिन मैं अपने घर की छत पर चढ़कर जाम तोड़ रही थी। जिस डाल पर जाम लगे थे, उसी पर एक गिरगिट बैठा था। मैंने सोचा, अब यह मुझे काटेगा। डरकर मैंने छत पर से छलांग लगाने की सोची। हमारा घर बहुत ऊंचा नहीं था, उस पर से छलांग लगाई जा सकती थी। मैंने छलांग लगा दी और मेरे पैर में मोच आ गई। मेरी मम्मी ने देखा और मुझे खूब डांटा। फिर कहा, आईंदा छत पर मत चढ़ना, वरना थप्पड़ लगाऊंगी।

□ गीता ठाकुर

मैंने ज़र्दा खाओ

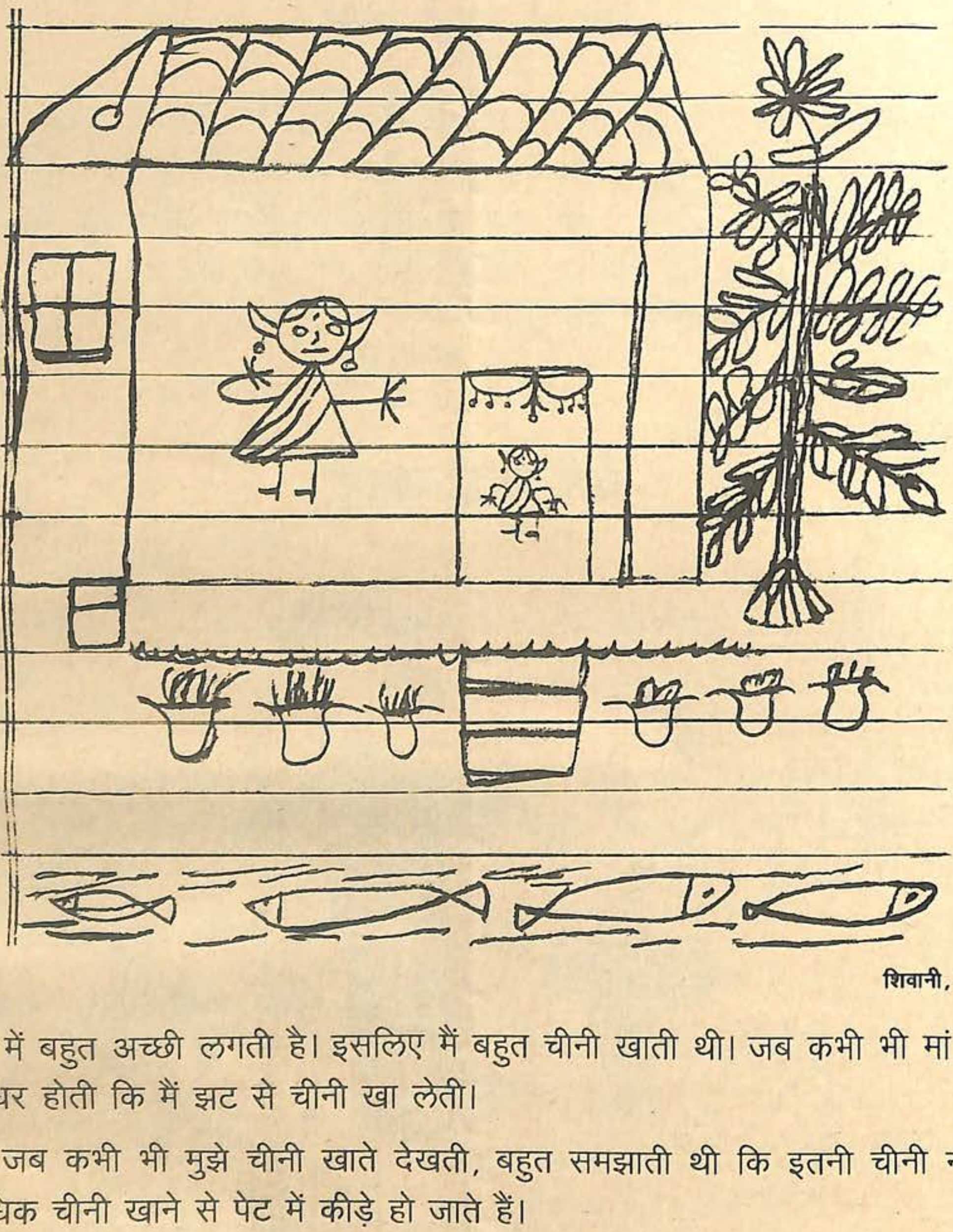


एक दिना की बात है। एक दिना मैं और मेरो दोस्त मज़ाक कर रहे थे। मेरे दोस्त ने मोये ज़र्दा खवाओ और मोये न दिखाओ। मैं खा गओ। अब मोये चक्कर आए। सो मेरे दोस्त ने मेरे दादा से के दई। अब दादा वहीं आ गए। बिन्ने मोसे पूछी तूनें ज़र्दा खाओ थो। मोये पतो नहीं हतो सो मैंने के दई नई खाओ। तो मेरे दादा ने मोये खूब पीटो। वा दिना से मैं अपने दोस्त से बोलो नई।

चित्र एवं कहानी □ चंद्रशेखर शर्मा, आठवीं, नई सराय, गुना



मन भर चीनी खाई



शिवानी, आठवीं, देवास

चीनी खाने में बहुत अच्छी लगती है। इसलिए मैं बहुत चीनी खाती थी। जब कभी भी मां रसोईघर से इधर-उधर होती कि मैं झट से चीनी खा लेती।

मां जब कभी भी मुझे चीनी खाते देखती, बहुत समझाती थी कि इतनी चीनी नहीं खानी चाहिए। अधिक चीनी खाने से पेट में कीड़े हो जाते हैं।

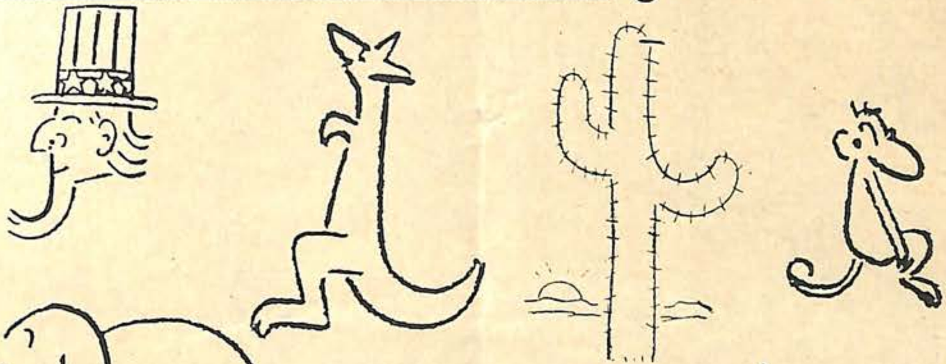
मैं मां की बात नहीं मानती थी। छुप-छुपकर चीनी खाने में बहुत मज़ा भी आता था।

एक दिन किसी काम से मां और पिताजी को बाहर जाना पड़ा। मां जाते समय मुझे कह गई कि, देखो मैं दो घंटे बाद आऊंगी। तुम बाहर कहीं नहीं जाना और दरवाज़ा बंद करके घर में रहना।

उनके जाते ही मैंने बाहर का दरवाज़ा बंद कर लिया। मैं घर में अकेले हो गई। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूं! अचानक मुझे चीनी की याद आ गई। उस दिन मैंने इतनी चीनी खाई कि मेरा मन भर गया।

□ अनीता कुमारी, आठवीं, सालीमपुर अहरा, पटना

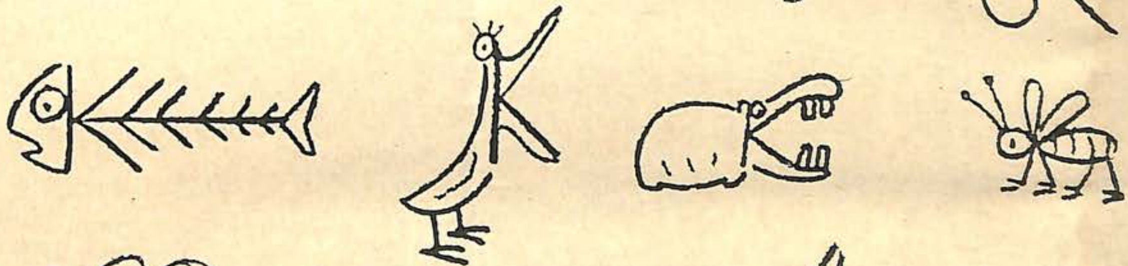
J



j



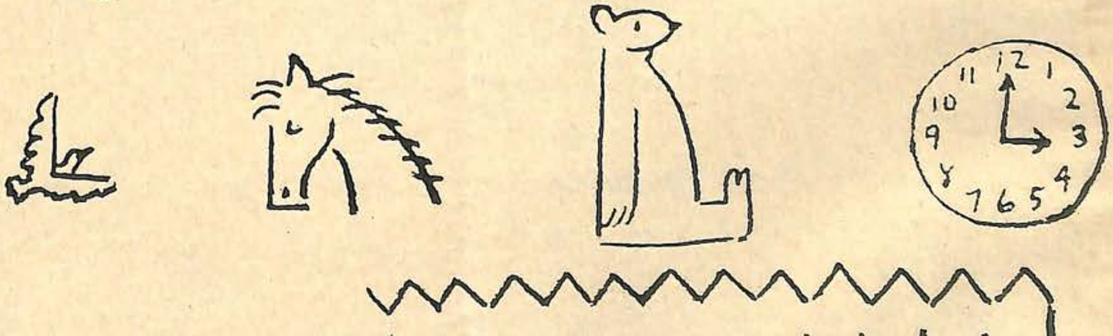
K



k



L



l







दो कविताएं

बूझो बूझो बूझो
मग़ज़ लगाकर जूझो

एक जानवर ऐसा
बिलकुल हिरणी जैसा
दुम है लंबी सोटा
पैर पांचवां मोटा

गरदन पतली ऊंची
चिकनी देह समूची
है वह शाकाहारी
परदेसी वनचारी

पेट संभाले जेबी
जेबी में है बेबी
धावक भी है कैसा
पी.टी. ऊषा जैसा

सीधा किंतु जुझारू
कहो कौन? कंगारू





बूझो बूझो बूझो
मग़ज़ लगाकर जूझो

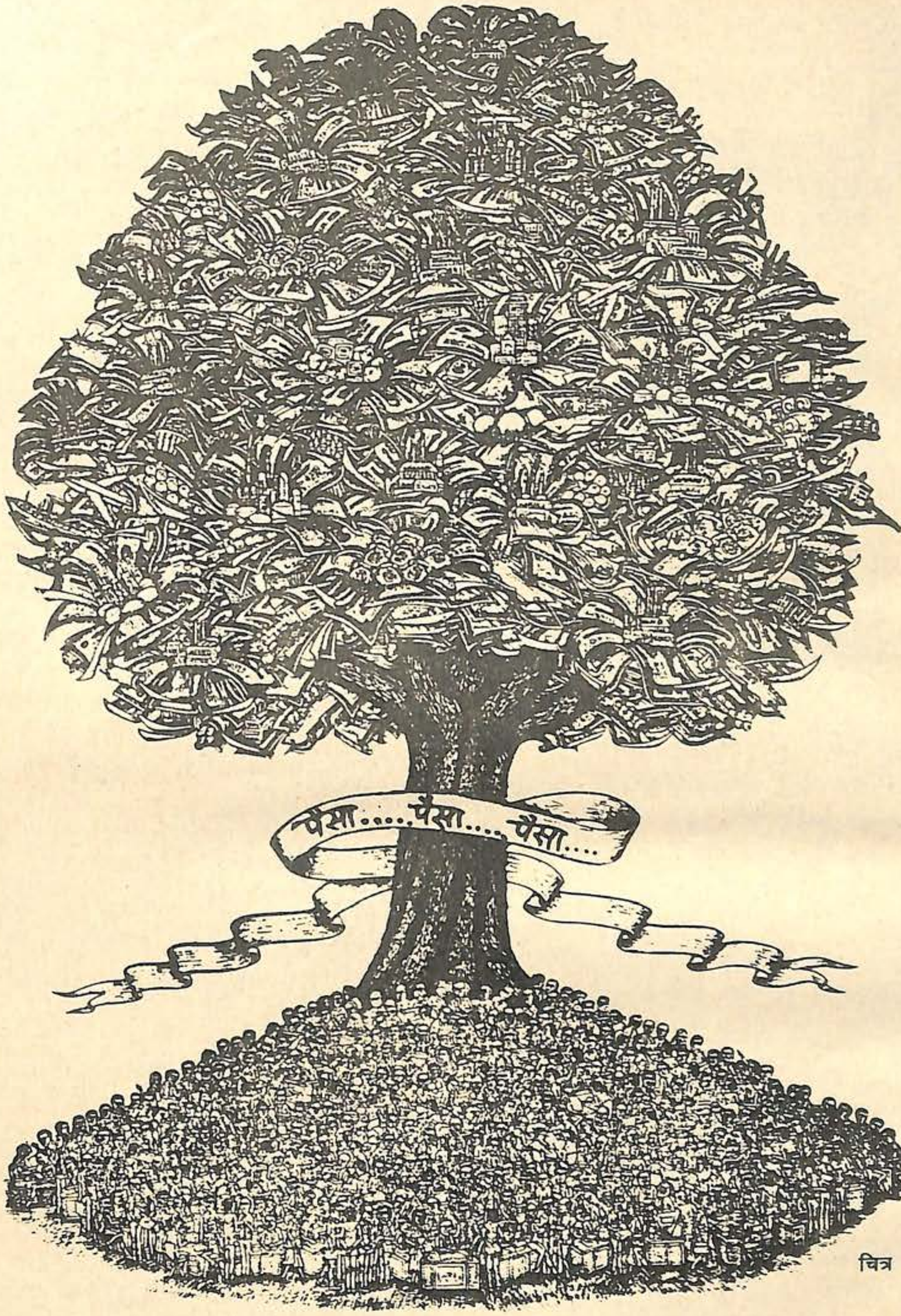
ना गदहा ना घोड़ा
दोनों जैसा थोड़ा
पूरे तन पर धारी
कारी सादी कारी

झुंड बनाकर घूमें
मस्तियों में झूमें
होता बांका जंगी
शुतुरमुर्ग का संगी

शेरू से भिड़ जाए
भुर्ता उसे बनाए
दम हो जिसमें, पाले
घोड़ा उसे बना ले

बोलो तो जी, डेब्रा!
कौन जानवर? ज़ेब्रा

□ रामवचन सिंह 'आनंद'
चित्र : शोभा घारे



चित्र : मोरगन स्टेनली

पैसा...पैसा...पैसा। अगर आज कवि रहीम होते तो शायद अपना दोहा कुछ इस तरह कहते–

रहिमन पैसा राखिए बिन पैसा सब सून

पैसा बिना न मिलिहे रोटी भी दो जून!

अब पैसा हो तो क्या नहीं हो सकता ? और न हो तो क्या होगा? यह सब तुम अच्छी तरह समझ सकते हो। पर क्या पैसा हमेशा से था ? पैसे की ज़रूरत ही क्यों पड़ी? जब पैसा नहीं था तो क्या करते थे? ऐसे सवाल तुम्हारे मन में भी होंगे। तो क्यों न इस बार अपन भी पैसे के इस चक्कर को देखें।



चित्र : कैरन

जब पैसा नहीं था

अब पैसा हमेशा से तो था नहीं। एक ज़माना था जब लोग ज़रूरत की चीज़ों की आपस में अदला-बदली करते थे। लेकिन इसमें कभी-कभी दिक्क़त भी आती थी। जैसे किसी के पास अनाज होता तो वह उसके बदले बर्तन या कपड़े या अन्य कोई ज़रूरत की वस्तु ले लेता। लेकिन कभी ऐसा भी होता कि अनाज के बदले ये चीज़ें नहीं मिलतीं, क्योंकि जिनके पास होतीं, उन्हें अनाज नहीं, कुछ और चाहिए होता। कुछ समय तक ऐसे ही चलता रहा।

धीरे-धीरे यह समझ बनने लगी कि कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिए जिसके बदले में ज़रूरत की चीज़ें मिल जाएं। और उसी वस्तु को लेन-देन का माध्यम मान लें। अब भले ही उस वस्तु की ज़रूरत न हो, फिर भी, चूंकि उसे लेन-देन का माध्यम माना गया है, इसलिए कोई उसे लेने से मना नहीं करेगा।

एक उदाहरण से समझते हैं .....मान लो अनाज लेन-देन का माध्यम हो। अब यदि जुलाहे को कुम्हार से बर्तन चाहिए, लेकिन कुम्हार को कपड़ा नहीं चाहिए, तो जुलाहा अनाज देकर बर्तन ले सकता है। कुम्हार को अनाज की ज़रूरत न भी हो, तब भी वह अनाज ले लेगा। क्योंकि कुम्हार अनाज देकर कोई और वस्तु ले सकता है।

गांवों में आज भी कई चीज़ें अनाज देकर ली जा सकती हैं। शायद तुम भी अपने दोस्तों से कुछ चीज़ें आपस में बदलते होगे। जैसे कंचे, माचिस के लेबिल, डाकटिकट आदि। शहरों में भी बच्चे आपस में कॉमिक्स, कैसेट, डाकटिकट जैसी चीज़ें एक दूसरे से अदल-बदल करते हैं।

अनाज ही नहीं, गाय, कौड़ी, नमक, ख़ास तरह के पत्थर, आदि लेन-देन के माध्यम रहे हैं।

वैसे तो कोई भी वस्तु लेन-देन का माध्यम बनाई जा सकती है। लेकिन अच्छा माध्यम वही वस्तु होगी जिसमें ये गुण हों-

1. वस्तु कई दिनों तक रखी जा सकती हो, वह सड़ती-गलती न हो।

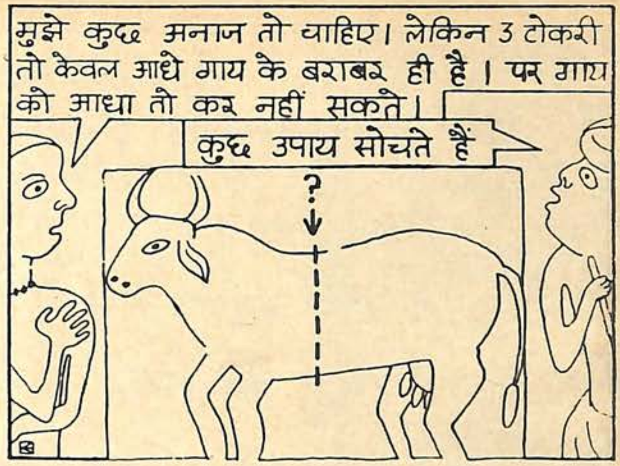
यहां हर पृष्ठ पर प्राचीन भारत के कुछ सिक्कों के चित्र दिए गए हैं। हर सिक्के की दोनों सतहों के चित्र हैं। साथ में उनका परिचय भी है। परिचय में सबसे पहले राज्य या शासक के वंश का नाम, फिर शासक का नाम और अंत में उन धातुओं का नाम है, जिनसे सिक्का बना है।


महाराष्ट्रः श्री पुलमावी (तांबा, जस्ता, सीसा, टिन)


आंध्र भृत्य : मुदानंद (सीसा)


क्षत्रप : रुद्रसिंह प्रथम (तांबा, सीसा, जस्ता, टिन)





चित्र : करन

2. वह न तो बहुत अधिक मात्रा में मिलती हो, न कम मात्रा में।
3 उसे छोटे-छोटे भागों में बांटा जा सकता हो।
4 उसे लाने-ले जाने में सहूलियत हो।
5. सबसे मुख्य गुण यह कि सब उसे लेन-देन का माध्यम मानें।

सोचो, क्या ऊपर बताई गई वस्तुएं लेन-देन का अच्छा माध्यम रही होंगी ? शायद नहीं।

हां, धातुओं में ये सभी गुण हैं,. इसीलिए लगभग 2500 साल पहले लोहे को लेन-देन का माध्यम बनाया गया। आरंभ में लोहे से बनी चीज़ें, गुटके तथा सिक्कों का उपयोग किया गया। बाद में जब चांदी, सोने तथा तांबे की खोज हुई, तो इन धातुओं ने लोहे की जगह ले ली। हालांकि कई जगह लोहे का उपयोग भी होता रहा।

सिक्का यूं चला.....

कहा जाता है कि सिक्कों की शुरुआत चीन में हुई। भारत में सबसे पहले चांदी के सिक्के बने।

भारत में कई अलग-अलग राजा थे। हर राजा अपने राज्य के लिये सिक्के जारी करवाता था।

दिल्ली की गद्दी पर बैठे शेरशाह सूरी ने ऐसा ही एक चांदी का सिक्का चलाया, जिसे उसने 'रुपया' नाम दिया।

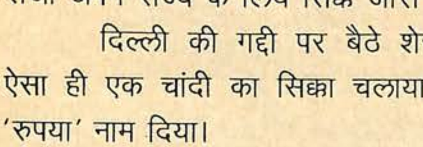

पहला रुपया

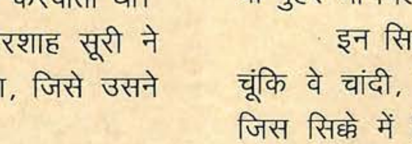
मुग़ल साम्राज्य में मुद्रा के रूप में सोने की मुहर, चांदी का रुपया और तांबे का बना दाम चलता था। एक मुहर में नौ रुपए और एक रुपए में चालीस दाम होते थे।

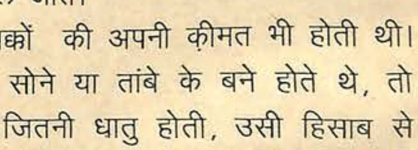
जब उत्तर भारत में मुग़लों का राज था, तब दक्षिण भारत में अन्य शासक थे। वहां मुहर, रुपया और दाम नहीं चलते थे। उनकी मुद्रा सोने के बने हुण और पणम थीं। जब व्यापारी एक राज्य से दूसरे राज्य में जाते तो वे अपनी मुद्रा देकर, दूसरे राज्य की मुद्रा ले लेते। मुद्रा बदलने का काम सराफ (सोने-चांदी के व्यापारी) करते थे। सराफ रुपया या मुहर ले लेते और बदले में हुण या पणम दे देते थे।

इसी तरह हुण या पणम के बदले में रुपया या मुहर भी मिल जाते।

इन सिक्कों की अपनी क़ीमत भी होती थी। चूंकि वे चांदी, सोने या तांबे के बने होते थे, तो जिस सिक्के में जितनी धातु होती, उसी हिसाब से


कुषाण : वीमा कड़फीसिस (सोना)


हंगल कदंब : नकरेश्वर (सोना)


मुग़ल : जहांगीर (सोना)

|| श्री गणेशाय नमः ||
९।। भाई अमृतराम देहली को कपूरथला से गिरजामल
मंगनीराम का जै गोपाल मालूम होवे। आगे आपको आज
दिन रु. ४०००) चार हजार रुपया की एक हुण्डी लिखी जाती है।
हुण्डी रखने वालो दीवान शेर अली को हुण्डी को रुपयो देहली
में चलने वालों रुपयो में अदा करजो।

लिखी मिती चैत्र सुदी ५ संवत् १८६५

द: मंगनीराम

उसकी क़ीमत तय होती।

पर आज जो सिक्के चलते हैं वे एल्यूमीनियम तथा निकल के बने होते हैं। इन सिक्कों की अपनी कोई क़ीमत नहीं होती। शायद यह जानकर तुम्हें आश्चर्य हो कि पचास पैसे के एक सिक्के की लागत भी पचास पैसे नहीं होती हैं। यह तो रही सिक्कों की बात। पर आजकल तो नोट भी चलते हैं। काग़ज़ से बने नोट वास्तव में काग़ज़ी मुद्रा है।

हुण्डी से रुपए तक......

शहरों के विकास के साथ-साथ व्यापार भी बढ़ा और दूर-दूर तक फैला। व्यापारी ज़ेवर, मसाले, कपड़े आदि जहाज़ों में भरकर दूसरे देशों को जाने लगे। साथ में उन्हें ढेर सारे सिक्के ले जाने या लाने पड़ते थे।

व्यापार केवल जहाज़ों से ही नहीं, सड़क मार्ग से भी होता था। ढेर सारे सिक्कों को कहीं भी लाना-ले जाना दिक़्क़त का काम था। दूसरी तरफ़ चोर-डाकुओं का डर भी बना ही रहता।

सिक्कों की बड़ी मात्रा के बाहर चले जाने से राज्य में उनकी कमी हो जाती। जो सिक्के बच जाते वे कम होने के कारण बार-बार इस्तेमाल होते और अधिक हाथों से गुजरते, इससे सिक्के जल्दी घिस जाते।

इन सब दिक़्क़तों के कारण व्यापारियों ने एक नया तरीक़ा निकाला। इस तरीक़े में सिक्कों को लाने-ले जाने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। बहुत सारे व्यापारी ऐसे थे जिनका कारोबार कई शहरों में फैला था। हर शहर में उनका एक आफ़िस होता था। इसे गद्दी या पेढ़ी कहा जाता था। इन्हें संभालने वाले मुंशी कहलाते। जब व्यापारी को किसी शहर में कुछ ख़रीद-फ़रोख़्त करनी होती तो वह अपने किसी अन्य आदमी के हाथ एक पत्र उस शहर के मुंशी के नाम भिजवा देता। पत्र में लिखा होता कि, 'अमुक व्यक्ति को इतने रुपए दे दो।' मुंशी पत्र रख लेता और रुपए दे देता। पत्र लाने वाला व्यक्ति रुपए लेकर ख़रीद-फ़रोख़्त करता और यदि कुछ रुपये बचते तो मुंशी को वापस लौटा देता। इस तरह के पत्रों को ही 'हुण्डी' कहा जाता था।

व्यापारी अपने अलावा अन्य लोगों के लिए भी हुण्डी लिखते थे। बस फ़र्क इतना था कि जितने की हुण्डी चाहिए होती, उतने रुपए जमा करने होते। व्यापारी रुपए लेकर हुण्डी दे देता। शहर में बैठा मुंशी हुण्डी मिलने पर कुछ कमीशन काटकर रुपए दे देता।

तुम कह सकते हो कि मान लो मुंशी रुपए देने से इंकार कर दे! पर वास्तव में ऐसा होता नहीं


यौधेय : जनजाति गणराज्य (तांबा)


सातवाहन : नहापन


चोल : उत्तम चोल

था। क्योंकि व्यापारी को अपनी 'साख' भी बनाकर रखनी होती थी। यदि कोई व्यापारी अपनी ही हुण्डी का भुगतान न करे तो बाज़ार में उसकी 'साख' गिर जाएगी। 'साख' गिरने का मतलब है कोई और व्यापारी उसके साथ व्यापार नहीं करेगा।

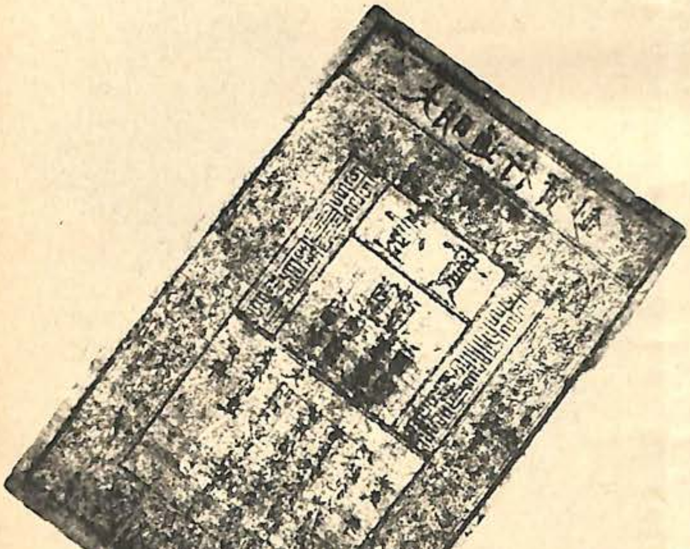
फिर तो हुण्डी की 'साख' इतनी बनी कि धीरे-धीरे सारा व्यापार ही हुण्डियों से होने लगा।

व्यापारी दूसरों को रुपया उधार देने का धंधा भी करते थे। जब हुण्डी की साख बढ़ गई तो रुपयों की बजाय हुण्डी उधार दी जाने लगी। व्यापारियों के पास जितना सोना, चांदी जमा होता, उसके आधार पर वे हुण्डियां लिखते। धीरे-धीरे जब व्यापारियों ने देखा कि उधारी में दी गई सब हुण्डियां एक साथ भुगतान के लिए नहीं आती हैं, तो उन्होंने अपने पास जमा धन से अधिक की हुण्डियां उधारी में देना शुरु कर दिया। एकाध बार ऐसा भी हुआ कि किसी व्यापारी के पास एक साथ कई हुण्डियां भुगतान के लिए आ गईं। पर व्यापारी के पास पैसे नहीं थे। ऐसे में व्यापारी की हुण्डी की साख ख़त्म हो गई।

हुण्डी के सिद्धांत पर ही काग़ज़ की मुद्रा यानी नोटों का प्रचलन शुरु हुआ। काग़ज़ के नोट भी विश्वास या साख पर चलते हैं।



चीनी नोट


चीन का एक पुराना नोट

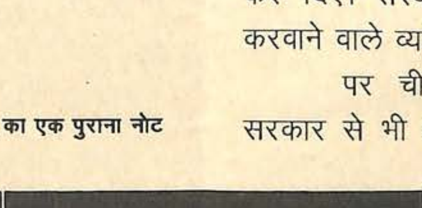
ज़माना काग़ज़ के नोटों का ....

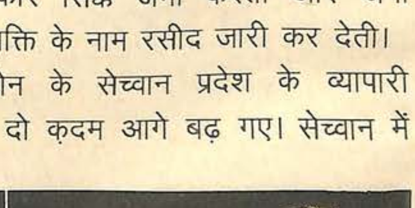
काग़ज़ी मुद्रा की शुरुआत भी चीन से ही हुई।

नौवीं शताब्दी में जब चीन में सिक्कों की कमी पड़ने लगी तो व्यापारियों ने एक नया उपाय खोज निकाला। वे जब शहर आते तो सराफों के पास अपने सिक्के जमा कर देते और उनसे इस जमा-पूंजी की रसीद या हुण्डी ले लेते। इन रसीदों के आधार पर वे व्यापार करते। इन रसीदों को चीनी भाषा में 'फेई शिएन' (यानी उड़ते हुए पैसे) कहा जाता था। चीनी सरकार ने सोचा कि अगर रसीदों से व्यापार होता रहा तो कुछ ही दिनों में सोना, चांदी और तांबा चलन से हट जाएंगे। सरकार ने इसका एक हल निकाला। सरकार ने भी सिक्के जमा करने शुरु कर दिए। सरकार सिक्के जमा करती और जमा करवाने वाले व्यक्ति के नाम रसीद जारी कर देती।

पर चीन के सेच्वान प्रदेश के व्यापारी सरकार से भी दो क़दम आगे बढ़ गए। सेच्वान में


तक्षशिला : पुष्कलावती (तांबा)


कुषाण : कनिष्क (तांबा)


कौशल : सत्यमित्र (तांबा)

लोहे के सिक्के चलते थे। ये सिक्के भारी होते थे और इन्हें लाने-ले जाने में ख़ासी दिक्क़त होती थी।

इसलिए कुछ व्यापारियों ने तय किया कि वे सिक्के जमा करके उनकी रसीद जमा करवाने वाले व्यक्ति के नाम नहीं, बल्कि धारक के नाम देंगे। धारक वह व्यक्ति होगा जिसके पास वह रसीद रहेगी और धारक, रसीद का इस्तेमाल ख़रीद-फ़रोख़्त में कर सकेगा।

सन् 1021 में चीनी सरकार ने एक बैंक बनाया, जो जमा करवाए गए सिक्कों के आधार पर रसीद देता था। अगले दो सालों में ये नोट पूरे चीन में चलने लगे।

धीरे-धीरे चीनी सरकार ने और अधिक नोट छापे । एक समय ऐसा आया कि कुल प्रचलित सिक्कों से अधिक क़ीमत के नोट प्रचलन में आ गए। सन् 1161 में हालत यह थी कि कुल सिक्कों की क़ीमत से छह गुना अधिक क़ीमत के नोट प्रचलन में थे। ज्यों-ज्यों नोट छपते मंहगाई त्यों-त्यों बढ़ती। मंहगाई इस क़दर बढ़ी कि वह वहां की सरकार के गिरने का एक कारण बन गई। सरकार गिरने के बाद नोटों का चलन रोक दिया गया। सन् 1850 में दोबारा नोटों का चलन शुरु हुआ।

तुम सोच रहे होगे कि भला मंहगाई बढ़ने का नोट छापने से क्या संबंध है? संबंध है आओ, एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। मान लो प्रचलन में केवल 100 रुपए हैं। काम करने वाले पांच व्यक्ति 20-20 रुपए कमाते हैं और बाज़ार में बिक्री के लिए केवल 50 वस्तुएं हैं। तो एक वस्तु का दाम 2 रुपए हुआ। अब यदि वस्तुएं 50 ही रहें और प्रचलन में 200 रुपए आ जाएं और कमाने वाले भी दस हो जाएं, तो हर वस्तु का दाम 4 रुपए हो जाएगा, यानी वस्तु मंहगी हो जाएगी । ख़ैर....

भारत में नोट का प्रचलन अंग्रेज़ी सरकार ने किया था । आज जो नोट हम देखते हैं वे सभी (एक रुपए के नोट को छोड़कर) भारत सरकार की ओर से रिज़र्व बैंक द्वारा जारी किए जाते हैं।

पहले नोट के बदले सोना या चांदी के सिक्के लिए जा सकते थे। लेकिन अब ऐसा नहीं है। अगर तुमने किसी भी नोट को ध्यान से देखा हो, तो एक रुपए के नोट को छोड़कर बाकी सभी पर लिखा होता है, *"मैं धारक को... रुपए अदा करने का वचन देता हूं।"* और इसके नीचे रिज़र्व बैंक के गवर्नर के हस्ताक्षर होते हैं। इस वचन से सरकार लोगों को यह विश्वास दिलाती है कि इन नोटों के माध्यम से व्यापार चलेगा। इसका यह अर्थ भी है कि हर व्यक्ति को किसी भी चीज़ के बदले में ये नोट स्वीकार करने होंगे। यदि कोई स्वीकार करने से मना करता है तो सरकार उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्यवाही कर सकती है।



हांगकांग का नोट

रुपए का आधार क्या है?

तुमने कभी न कभी यह मुहावरा ज़रूर सुना होगा 'रुपए पेड़ पर नहीं फलते, या 'रुपयों का पेड़ नहीं लगा है,' बात तो सही है। रुपए तो सरकार प्रेस में छापती है। वैसे तो सरकार जितने चाहे उतने नोट


परमार : गधैया पैसा (चांदी, तांबा, टिन)


गुर्जर प्रतिहार : भोज प्रथम (चांदी, तांबा, टिन)


घोरिद : मुहम्मद बिन सम (चांदी, तांबा, टिन)



एक यूनानी नोट

छाप सकती है। सिर्फ़ उसे सरकारी ख़ज़ाने में सोने की एक निश्चित मात्रा हमेशा रखनी पड़ती है।

अब तुम सोच रहे होगे कि जब सरकार मनचाही संख्या में नोट जारी कर सकती है, तो करती क्यों नहीं है? वास्तव में यह सरकार की अपनी नीतियों तथा ज़रूरतों पर निर्भर करता है कि वह कितने नोट जारी करे। उसे यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि नोट जारी करने से देश की अर्थ व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ेगा। चीज़ों के दाम तो नहीं बढ़ेंगे। आदि आदि।

अवमूल्यन क्या है?

तुमने हाल ही में अख़बारों में पढ़ा होगा कि नई सरकार ने रुपए का अवमूल्यन कर दिया है।

यह तो तुम जानते ही हो कि हर देश की अपनी मुद्रा है । किसी अन्य देश में व्यापार करने या अन्य किसी व्यय के लिए देशी मुद्रा के बदले संबंधित देश की मुद्रा लेनी होती है। जैसे 1 डॉलर (अमरीकी मुद्रा) पहले 17 रुपए के बराबर था, लेकिन अवमूल्यन से अब यह 26 रुपए के बराबर है। यानी अवमूल्यन का अर्थ है देशी मुद्रा का विदेशी मुद्राओं में मूल्य कम करना। डॉलर की तरह ही अन्य देशों की मुद्राएं भी मंहगी हो गई हैं।

हमारा रुपया कितने डॉलर या पौंड (या अन्य मुद्रा) के बराबर है, यह इस पर निर्भर करता है कि हमारी अर्थव्यवस्था (माली हालत), उत्पादन और साख कैसी है।

अर्थ व्यवस्था पर अवमूल्यन से अच्छे-बुरे दोनों तरह के प्रभाव पड़ते हैं। पर मोटे रूप से जो फ़ायदा दिखता है वह यह कि इससे निर्यात को बढ़ावा मिलता है, जबकि आयात में कमी आती है। इसे यूं भी कह सकते हैं कि जितनी विदेशी मुद्रा देश में आती है, उसकी तुलना में भुगतान कम करना होता है।

ज़रूरत पड़ने पर अन्य देश भी अपनी मुद्रा का अवमूल्यन करते हैं।

चलते-चलते

अब एक आख़िरी बात। दो-तीन साल पहले तुमने देखा होगा कि चिल्लर पैसों की कमी हो गई थी। तब चाय, पान, सब्ज़ी वाले आदि छोटे दुकानदारों ने अपनी मुद्रा चलाई थी। हालांकि यह ग़ैर क़ानूनी थी। वे काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर अपनी दुकान की सील लगाकर पच्चीस-पचास पैसे बनाकर चलाते थे। और अपने लेन-देन के काम में लाते थे कुछ लोगों ने डाक टिकटों को पोलीथीन में पैक करके इस हेतु इस्तेमाल किया था।

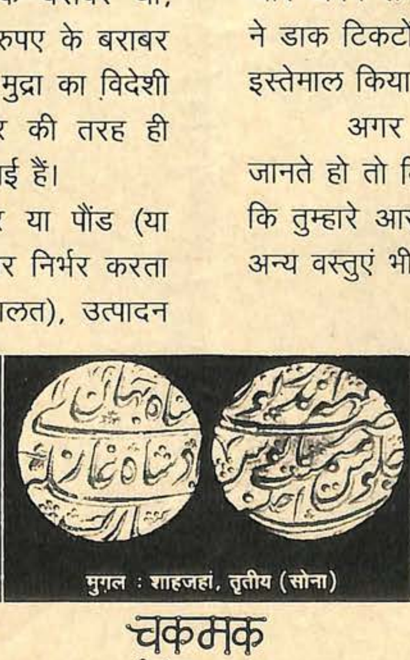
अगर तुम ऐसे और तरीक़ों के बारे में जानते हो तो लिख भेजो। और हां, यह भी पता करो कि तुम्हारे आसपास रुपए-पैसे के अलावा क्या कोई अन्य वस्तुएं भी लेन-देन का माध्यम बनी हुई हैं!

□ **अंजली नरोन्हा**

नोट की पारदर्शियां : घनश्याम



सातवाहन : वसिष्ठीपुत्र श्री पुलमावी



मुग़ल : शाहजहां, तृतीय (सोना)



मैसूर : टीपू सुल्तान, दोहरा रुपया


जंगल में चली मुद्रा
चित्र कथा : शिवेंद्र पांडिया
शब्द : राजेश उत्साही
जंगल में कोई मुद्रा तो थी नहीं। जिसके पास जो चीज़ होती, वह उसे देकर बदले में जो भी मिलता, ले लेता।
कुछ जानवर अपनी ताक़त के बल पर दूसरों से छीन लेते।
जंगल का प्रशासक शेर इस छीना-झपटी से परेशान था। 'शहर पलट' तोते ने बताया, कि वहां रुपए-पैसे चलते हैं।
रुपए-पैसे दो और जो चाहो सो लो। क्यों न हम भी ऐसा कुछ करें।
शेर को 'आइडिया' पसंद आया। उन्होंने शंख को जंगल की मुद्रा बनाना तय किया।
नदी से शंख निकालने के लिए मछलियों को नियुक्त किया गया। पहरेदार बिठा दिए गए। हिसाब के लिए बंदर को लगाया गया।
शंख जंगल के खज़ाने में जमा होते और फिर वहां से काम के हिसाब से सबको बांटे जाते।
इस तरह जंगल में लेन-देन का माध्यम शंख बन गए।
पर कुछ खुराफ़ाती जानवर भी थे।


वे पड़ोस के जंगल की नदी में रहने वाली मछलियों को केंचुए देकर.......
.... बदले में शंख लाने लगे।
बस, उनके मज़े ही मज़े थे।
धीरे-धीरे ऐसे जानवरों की संख्या बढ़ने लगी, जो काम-धाम तो कुछ ख़ास करते नहीं थे, पर फिर भी उनके पास पर्याप्त मुद्रा होती।
शेर को भी लगा कि कुछ गड़बड़ है।
एक दिन वह टहलता हुआ पड़ोस के जंगल में निकल गया।
नदी किनारे पहुंचा तो मछलियों ने पूछा 'केंचुए लाए हो? शेर ने कहा, कैसे केंचुए?
मछलियों ने सारा क़िस्सा बताया।
शेर ने 'शहर पलट' तोते से बात की।
तय किया गया कि अब हर शंख पर जंगल चिन्ह लगाया जाएगा, ताकि दूसरे जंगल से शंख न लाए जा सकें।

दुनिया पक्षियों की–29

उल्लू


खूसट

मनुष्य उतना बुद्धिमान होता नहीं है जितना वह अपने आप को समझता है। कई जंतुओं और पक्षियों के नामों का उपयोग गाली के रूप में करके वह अपने को चतुर दिखाने की कोशिश करता है। उल्लू के साथ मनुष्य ने बहुत अन्याय किया है। उल्लू का नाम मूर्खता के साथ जोड़ा गया है और मूर्ख या नासमझ मनुष्य को उल्लू कहा जाता है। सच्चाई तो यह है कि उल्लू बड़े शांत और धीर -गंभीर स्वभाव वाला पक्षी है। मनुष्य को हानि पहुंचाने वाले जंतुओं, विशेष रूप से चूहों का यह दुश्मन होता है। इसे लक्ष्मी का वाहन भी माना गया है। हां, पश्चिमी देशों में ज़रूर उल्लू को बुद्धिमानी का प्रतीक माना गया है और अंग्रेज़ी में इसे **'वाइज़ आउल'** यानी ***'बुद्धिमान उल्लू'*** कहते हैं।

मनुष्य की दूसरी मूर्खता यह है कि उसने इस सीधे-सादे पक्षी के साथ बड़े अजीब और बिना सिर-पैर के अंधविश्वास जोड़ दिए हैं। जब हम इनके बारे में सुनते हैं तो हमारा सिर शर्म से झुक जाता है कि आज भी हमारे देश में ऐसी ग़ैर वैज्ञानिक बातों में विश्वास करने वाले लोग रहते हैं। इन अंधविश्वासों के कारण पता नहीं प्रति वर्ष कितने उल्लुओं को मार दिया जाता है।

एक ओर तो इस पक्षी को लक्ष्मी का वाहन माना जाता है और दूसरी ओर इसके बोलने को अशुभ भी माना जाता है। शायद इसलिए कि उल्लू रात को ही बाहर निकलते हैं और रात के सन्नाटे में इनकी देर तक गूंजने वाली आवाज़ और चीखें मनुष्य के मन में भय पैदा कर देती हैं।

भारत में उल्लू की लगभग तीस जातियां हैं-कुछ बड़ी तो कुछ छोटी, किंतु सभी जातियों में कुछ समान बातें पाई जाती हैं।

सभी जातियों के उल्लू दिन में सोते हैं और रात को भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं। इससे यह धारणा बन गई है कि इस पक्षी को दिन में दिखाई नहीं देता। किंतु यह बिल्कुल ग़लत है। यह कैसे संभव है कि जो पक्षी रात को बहुत कम उजाले में देख सकता है वह दिन के उजाले में बिल्कुल नहीं देख सके? सभी उल्लू दिन में भी अच्छी तरह देख सकते हैं। इन्हें कभी-कभी, किंतु बहुत कम मौक़ों पर दिन में भी अपना भोजन ढूंढते हुए देखा जा सकता है। फिर सवाल यह उठता है कि ये पक्षी रात में ही निकलना क्यों पसंद करते हैं? यदि दिन में बाहर निकले किसी भूले-भटके उल्लू को तुम देख लोगे तो तुरंत इसका उत्तर जान जाओगे। दिन में निकलने वाले सभी पक्षी, विशेष रूप से चील, कौआ, भुजंगा आदि उल्लू को अपना दुश्मन मानते हैं क्योंकि वह उनके बच्चों को खा जाता है। यदि दिन में उल्लू दिखाई पड़ जाए तो ये सब पक्षी हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाते हैं और उसे खदेड़ कर ही दम लेते हैं। इस झगड़े-फ़साद से बचने के लिए उल्लू रात में ही निकलते हैं, उस समय दूसरे पक्षी सोए रहते हैं।

सभी उल्लूओं में पाई जाने वाली दूसरी समानता यह है कि इनके शरीर के 'पर' रेशम के समान मुलायम होते हैं, और यही कारण है कि उड़ते समय उल्लू बिल्कुल आवाज़ नहीं करते। इससे इन्हें शिकार पकड़ने में बड़ी सहायता मिलती है। रात के अंधेरे में इधर-उधर भागने वाले चूहे को पता ही नहीं चलता कि उल्लू के रूप में उसकी मौत उसके पास आ रही है।

उल्लूओं की तीसरी विशेषता यह है कि उनका चेहरा चपटा होता है और दोनों आंखें सामने की ओर होती हैं, न कि सिर के बाजू में, जैसे अन्य पक्षियों में। पीछे देखने के लिए उल्लू अपनी गर्दन को 270 अंश के कोण तक घुमा सकता है।

हमारे देश में उल्लू की सबसे अधिक पाई जाने वाली तीन जातियां हैं - **घुग्घु, करैल** या **कुराया** और **खूसट**।

घुग्घु का आकार मुर्गी के बराबर होता है। इसकी पहचान यह है कि इसके सिर पर सींग के

समान दो उभार होते हैं। इसी कारण इसे अंग्रेज़ी में **'हार्न्ड आउल'** या सींग वाला उल्लू कहते हैं। किंतु वास्तव में ये सींग न होकर परों के गुच्छे होते हैं। इसके शरीर का ऊपरी भाग गहरे कत्थई रंग का और निचला भाग हल्के रंग का होता है। नर और मादा के रंग-रूप में कोई अंतर नहीं होता।

सांप, गिरगिट, छोटे पक्षी, चूहे, मेंढक आदि छोटे जंतु, घुग्घु का भोजन हैं। कभी-कभी इसे कीड़े खाते हुए भी देखा जा सकता है। किंतु इसका सबसे प्रिय भोजन चूहा है। ये बड़ी संख्या में चूहों का सफ़ाया करते हैं और इस प्रकार मनुष्य की भलाई करते हैं।

इसका नाम घुग्घु इसलिए पड़ा है कि यह 'घु-ग्घु' की तेज़ आवाज़ करता है। रात में यह आवाज़ दूर तक सुनाई पड़ती है और बड़ी डरावनी लगती है। शायद इसी कारण घुग्घु का किसी घर पर बैठकर बोलना अशुभ माना जाता है। दिन में घुग्घु किसी घने पेड़ या झाड़ी में या किसी चट्टान की कगार के नीचे सुरक्षित स्थान पर सोता रहता है और अंधेरा होते ही शिकार की तलाश में निकल पड़ता है।

घुग्घु का प्रजनन काल नवंबर से अप्रैल तक होता है। घुग्घु घोंसला नहीं बनाते। किसी कगार



घुग्घु

पर पड़ी मिट्टी में या झाड़ी के नीचे ज़मीन पर ही मादा तीन या चार सफ़ेद अंडे देती है।

करैल या कुराया, घुग्घु से कुछ छोटा, यानी कौए के बराबर होता है। इसके शरीर के



करैल

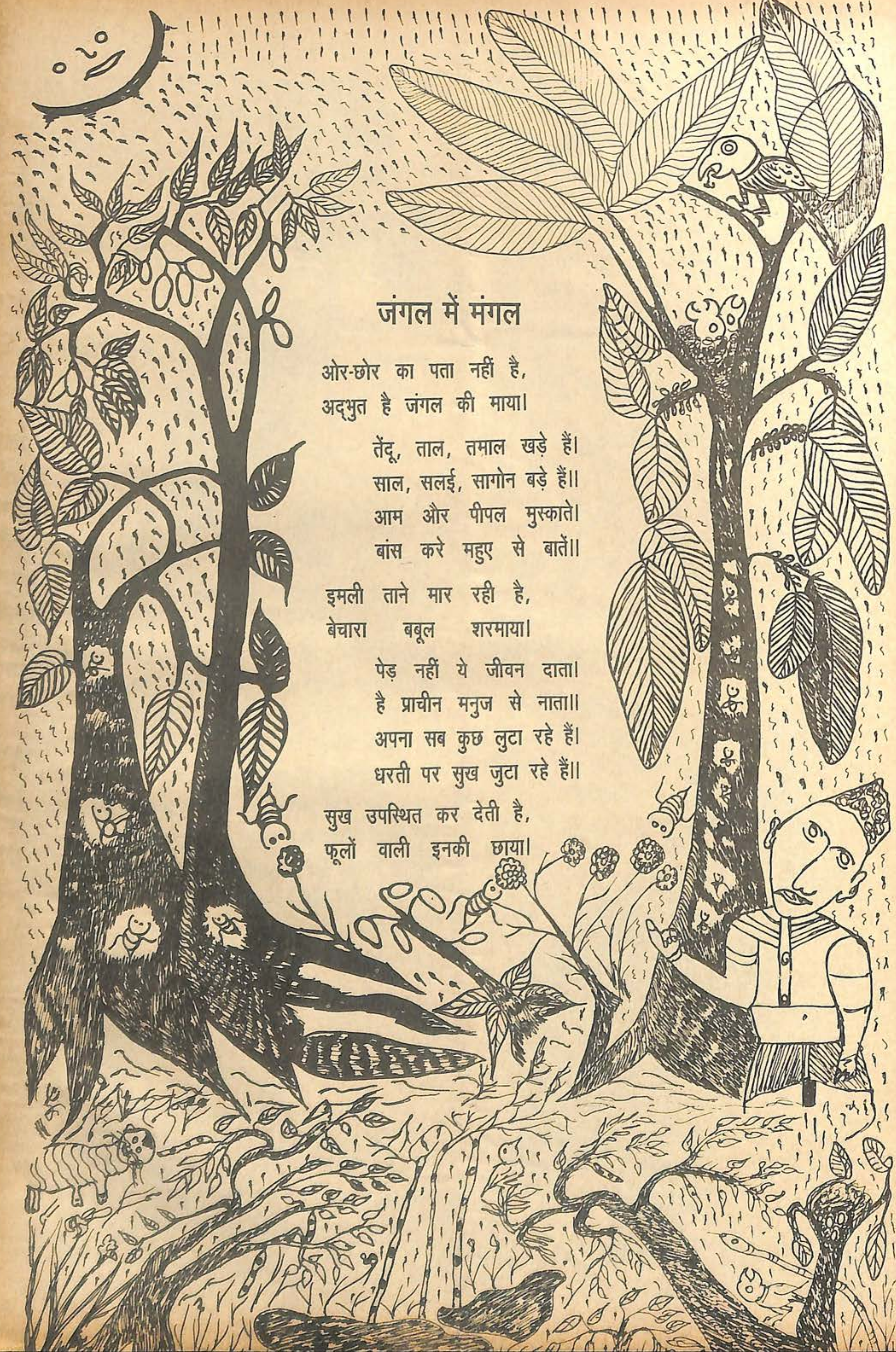
ऊपर का रंग सुनहरा भूरा होता है और इस पर काले और सफ़ेद धब्बे पाए जाते हैं। शरीर के नीचे का भाग सफ़ेद होता है और इस पर कत्थई धब्बे होते हैं। नर और मादा समान दिखाई पड़ते हैं। सूने घरों तथा खंडहरों में रहना इसे पसंद है। अंग्रेज़ी में इसे **'बार्न आउल'** या खलिहान का उल्लू कहते हैं।

करैल का प्रमुख भोजन चूहे हैं और इस प्रकार यह उल्लू भी मनुष्य के लिए लाभदायक पक्षी है। इसकी आवाज़ घुग्घु से अलग होती है। जब यह बोलता है तब ऐसा लगता है कि कोई चीख़ रहा है। दिन में करैल किसी अंधेरे स्थान में छुप कर सोते हैं और दिन डूबने पर बाहर निकलते हैं।

करैल का प्रजनन काल लगभग पूरे वर्ष भर चलता है। किसी पेड़ के खोखले तने में या दीवाल के छेद में तिनकों और चीथड़ों का ढेर लगाकर ये घोंसला बनाते हैं जिसमें मादा चार से सात तक अंडे देती हैं। अंडों का रंग सफ़ेद होता है।

हमारे देश में सबसे अधिक संख्या में पाया जाने वाला उल्लू **खूसट** है। मैना के आकार का यह पक्षी शहर, गांव, जंगल सभी दूर पाया जाता है। जिस प्रकार छोटी किताब को अंग्रेज़ी में बुक के स्थान पर बुकलेट कहते हैं उसी प्रकार इस छोटे

(शेष पृष्ठ 23 पर)



जंगल में मंगल

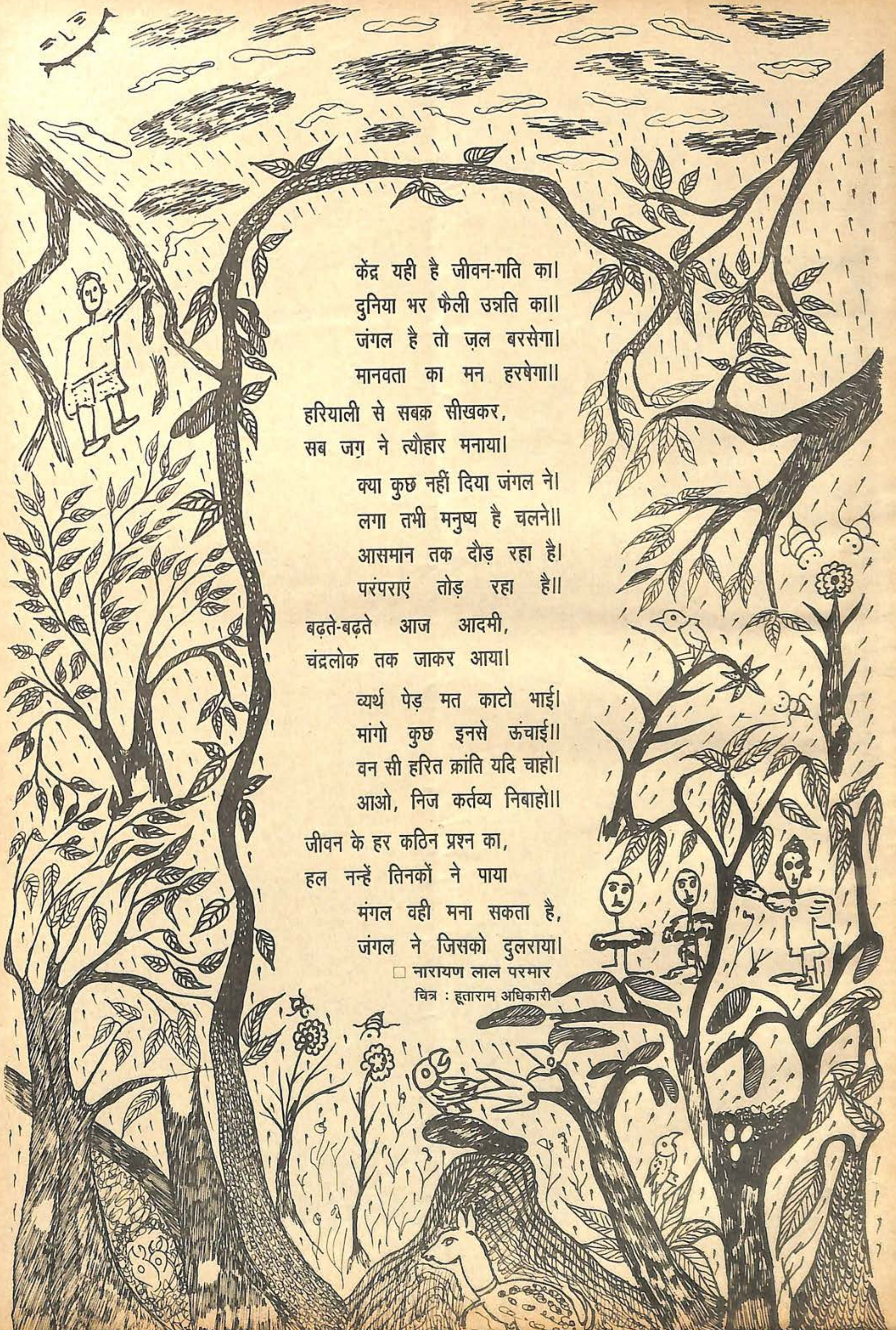
ओर-छोर का पता नहीं है,
अद्‌भुत है जंगल की माया।

तेंदू, ताल, तमाल खड़े हैं।
साल, सलई, सागोन बड़े हैं।।
आम और पीपल मुस्काते।
बांस करे महुए से बातें।।

इमली ताने मार रही है,
बेचारा बबूल शरमाया।

पेड़ नहीं ये जीवन दाता।
है प्राचीन मनुज से नाता।।
अपना सब कुछ लुटा रहे हैं।
धरती पर सुख जुटा रहे हैं।।

सुख उपस्थित कर देती है,
फूलों वाली इनकी छाया।



केंद्र यही है जीवन-गति का।
दुनिया भर फैली उन्नति का।।
जंगल है तो ज़ल बरसेगा।
मानवता का मन हरषेगा।।
हरियाली से सबक़ सीखकर,
सब जग़ ने त्यौहार मनाया।

क्या कुछ नहीं दिया जंगल ने।
लगा तभी मनुष्य है चलने।।
आसमान तक दौड़ रहा है।
परंपराएं तोड़ रहा है।।
बढ़ते-बढ़ते आज आदमी,
चंद्रलोक तक जाकर आया।

व्यर्थ पेड़ मत काटो भाई।
मांगो कुछ इनसे ऊंचाई।।
वन सी हरित क्रांति यदि चाहो।
आओ, निज कर्तव्य निबाहो।।
जीवन के हर कठिन प्रश्न का,
हल नन्हें तिनकों ने पाया
मंगल वही मना सकता है,
जंगल ने जिसको दुलराया।

□ नारायण लाल परमार

चित्र : हूताराम अधिकारी



सवालीराम

■ छिपकली की पूंछ टूट क्यों जाती है? पूंछ टूटने के बाद भी छटपटाती क्यों रहती है?

□ राकेश मालवीय हिरनखेड़ा, होशंगाबाद
सचिन दुबे, एस.पी.एम. होशंगाबाद

□ *यह तो तुम जानते ही होगे कि सांप, मगर, छिपकली जैसे कुछ जानवर अपनी पूंछ को फटकारकर शत्रु से अपना बचाव करते हैं। इनमें से कुछ इस तरह से अपने शत्रु को चोट भी पहुंचाते हैं। परंतु हमारे घरों में पाई जाने वाली छिपकली अपनी पूंछ का उपयोग कुछ और ही निराले ढंग से करती है। जब कभी भी उसे अपने किसी शत्रु से ख़तरा महसूस होता है या फिर उसकी पूंछ शत्रु की पकड़ में आ जाती है, तो वह अपनी पूंछ छोड़कर भाग जाती है! कटी हुई पूंछ, कुछ देर तक तड़पती-छटपटाती रहती है, जिससे शत्रु का ध्यान उसमें लग जाता है। तब तक छिपकली किसी सुरक्षित स्थान पर भाग जाती है।*

शत्रु को इस तरह से चकमा देने वाली छिपकली की पूंछ में एक विशेषता होती है। उसकी पूंछ की अस्थि और रीढ़ की अस्थि के बीच का जोड़ बहुत कमज़ोर होता है। इसलिए थोड़ा सा दबाव पड़ने पर या छिपकली की अपनी कोशिश से वह आसानी से टूट जाता है, जिससे पूंछ शरीर से अलग हो जाती है। पूंछ से अलग हुए टुकड़े में तंत्रिकाओं के बचे हुए सिरे एक साथ उत्तेजित हो जाते हैं, इनकी वजह से ही कटा हुआ सिरा कुछ सेकेंड तक छटपटाता रहता है।

एक और बात पर तुमने ग़ौर किया होगा। छिपकली की पूंछ टूट जाने के बाद भी खून नहीं निकलता है। असल में छिपकली की पूंछ में खून की नलियां होती ही नहीं हैं। वे जहां पूंछ शुरू होती है वहीं तक रहती हैं। इसीलिए पूंछ टूट जाने पर भी नलियों को कोई नुकसान नहीं पहुंचता और खून भी नहीं निकलता।

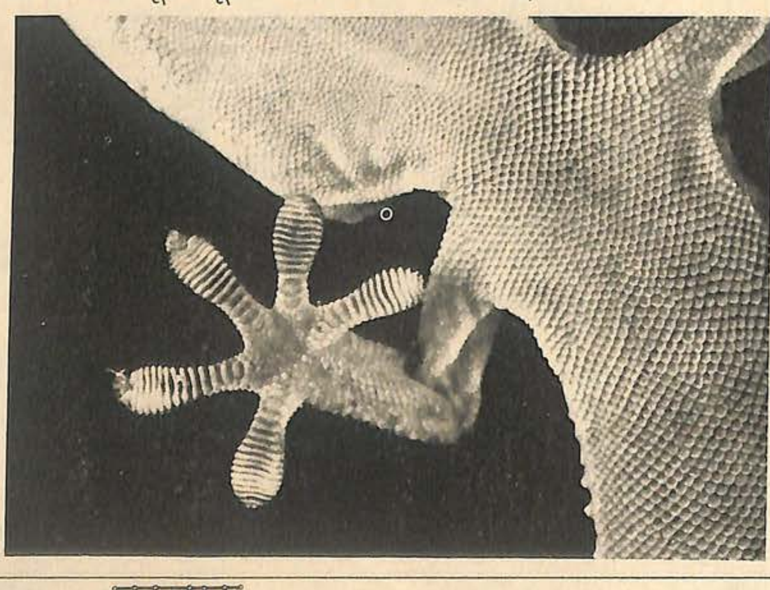
पर छिपकली अपनी पूंछ तभी छोड़ती है जब उसके पास बचाव का कोई और रास्ता नहीं रह जाता। पूंछ टूट जाने पर जल्द ही उसके स्थान पर नई पूंछ उग आती है। पर इसकी लंबाई-चौड़ाई पहले वाली पूंछ से कुछ कम होती है।

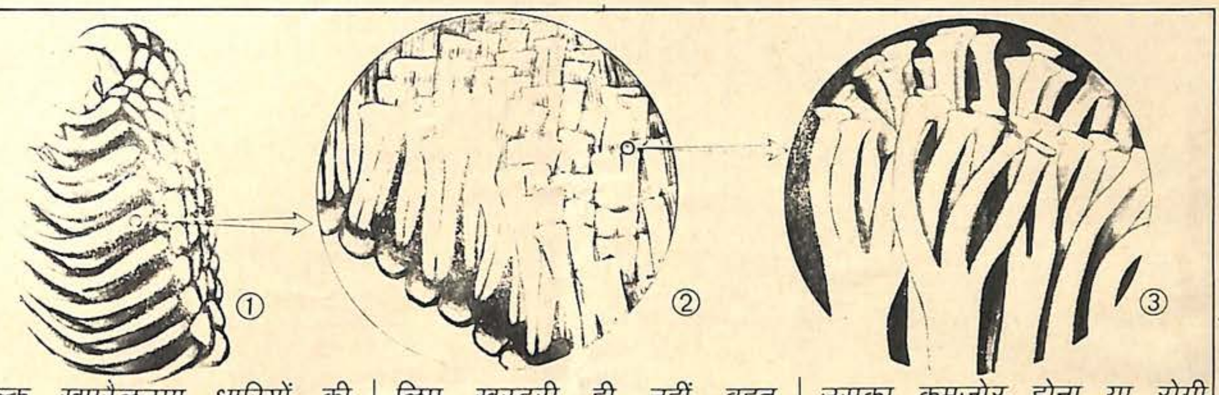
■ छिपकली दीवार और कांच पर कैसे चल पाती है? कहते हैं कि जब वह कमज़ोर या रोग -ग्रस्त होती है तो गिर जाती है। क्या यह सच है?

□ राधेश्याम मौर्य, प्रतापगढ़, उ.प्र.

□ *सीधी-सपाट या खुरदुरी ज़मीन पर चलना तो हम सभी जानते हैं, पर खड़ी दीवारों या कांच जैसी चिकनी सतहों पर चलना या फिर छत पर उल्टे लटककर रेंगना तो छिपकली के ही बस की बात है।*

*छिपकली को यह क्षमता प्रकृति ने ही दी है। छिपकली के पंजों की बनावट ऐसी होती है कि वह बहुत चिकनी सतह पर भी चिपकी रह सकती है। उसके पंजे की हर अंगुली की निचली सतह पर सोलह से इक्कीस शल्क होते हैं (**चित्र-1**)! ये शल्क परतदार होते हैं। सूक्ष्मदर्शी से देखने पर ये*





शल्क खपरैलनुमा धारियों की तरह दिखते हैं।

प्रत्येक शल्क पर बाल के समान लगभग 1,50,000 रचनाएं होती है ***(चित्र-2)***। ऐसी प्रत्येक रचना ख़ुद 2000 हिस्सों में बंटी होती है और हरेक हिस्से का छोर गोल आकार का होता है ***(चित्र-3)***। क्या तुम अंदाज़ा लगा सकते हो कि ये रचनाएं कितनी बारीक होती होंगी? वास्तव में ये इतनी बारीक होती हैं कि कांच की सतह, जिसे हम चिकना समझते हैं, इनके लिए खुरदुरी ही नहीं बहुत अधिक खुरदरी होती है। इसीलिए ऐसी सतहों पर छिपकली बिना फिसले आराम से चल सकती है। छिपकली की विभिन्न जातियों में शल्क तथा उनकी अन्य रचनाओं की संख्या अलग-अलग होती है।

कभी-कभार छिपकली के पंजों की ये विशेष संरचनाएं धूल या किसी अन्य कारण से अस्त-व्यस्त हो जाती हैं तो छिपकली की यह क्षमता कम हो जाती है और इसी कारण वह दीवार से गिर पड़ती है। पर इसे उसका कमज़ोर होना या रोगी होना नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में उसके पंजों पर नई त्वचा आ जाती है और उस पर नई संरचनाएं भी।

छिपकली को तुमने कई बार देखा होगा। पर कभी उसकी चाल पर ग़ौर किया है? अब करना। जब छिपकली चलती है तो पंजे को रखते समय अंगुलियों को आगे की तरफ रखती है, लेकिन पंजा उठाते समय उन्हें पीछे की तरफ मोड़ती है।

■■■

दुनिया पक्षियों की . . . . शेष

उल्लू को आउल न कहते हुए ***'आउलेट'*** कहते हैं। इसका शरीर भूरा मटमैला होता है और इस पर सफ़ेद धब्बे होते हैं। नर और मादा एक जैसे दिखाई पड़ते हैं।

मनुष्य की बस्ती के पास रहना खूसट को पसंद है। अधिकतर यह कीड़े खाता है किंतु मौका मिलने पर छोटे पक्षियों और चूहों को भी खा लेता है।

दिन में खूसट पेड़ के खोखले तने में या घनी पत्तियों से लदी शाखा पर सोते रहते हैं। शाम का अंधेरा घिरने से पहले ये बाहर आ जाते हैं और इनकी परिचित चिरपिर-चिरपिर आवाज़ सुनाई पड़ने लगती हैं। इन्हें प्रायः सड़क के किनारे लगी बत्तियों के आसपास मंडराने वाले कीड़ों को खाते हुए देखा जा सकता है।

यदि दिन में सोते हुए खूसटों की नींद में कोई ख़लल डाले तो ये अपनी छुपने की जगह से बाहर आ जाते हैं और छेड़ने वाले को घूर-घूर कर देखने लगते हैं। साथ ही, अपने सिर को कुछ इस ढंग से ऊपर-नीचे हिलाते हैं कि देखने वाले को बरबस हंसी आ जाती है।

खूसट का प्रजनन काल नवंबर से अप्रैल तक होता है। पेड़ के खोखले तने या दीवाल के छेद में तिनके बिछाकर बनाए गए घोंसले में मादा तीन या चार अंडे देती है।

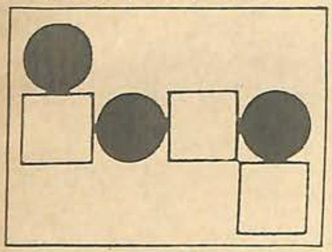
उल्लू के बारे में तुमने इतना कुछ पढ़ा। क्या तुमने इन तीन जातियों या अन्य किसी जाति के उल्लू को देखा है? दिन में या रात में? वह क्या कर रहा था? क्या तुम्हें इसके बारे में किसी अंधविश्वास की जानकारी है? उल्लू के बारे में तुम क्या सोचते हो? चकमक को ज़रूर लिख भेजो।

□ **अरविंद गुप्ते**

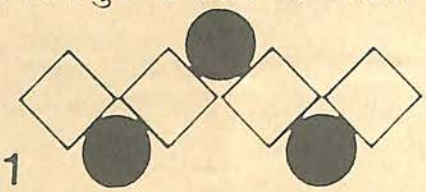
चित्र सौजन्य : बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी

दर्पण के संग खेलो

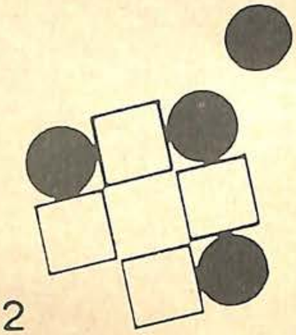
एक छोटा दर्पण या उसका टुकड़ा लो और मास्टर चित्र के पास रखकर उसका प्रतिबिंब देखो। प्रतिबिंब और मास्टर चित्र को मिलाकर एक नया चित्र बनता है। यहां दिए अन्य चित्र ऐसे ही बने हैं। दर्पण को थोड़ा आगे-पीछे खिसकाकर, तिरछा करके रखो और तुम भी बनाने की कोशिश करो।



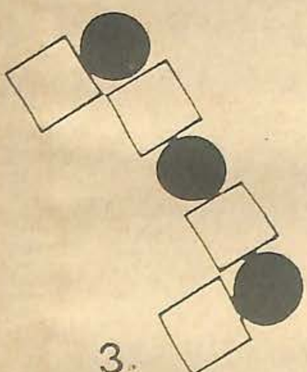
मास्टर चित्र



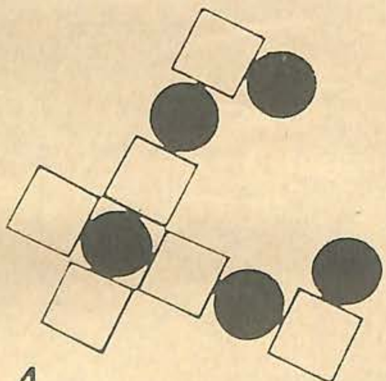
1



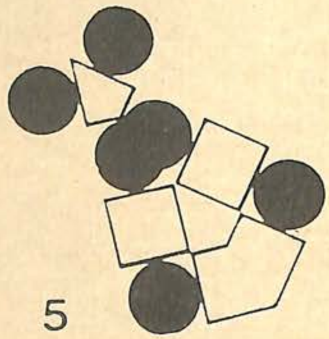
2



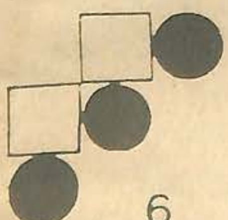
3.



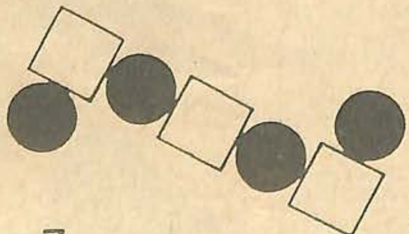
4



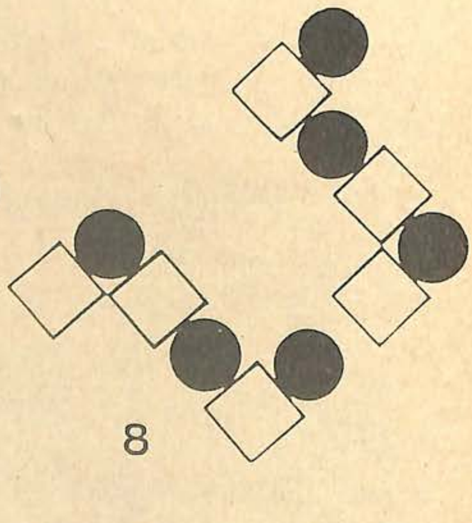
5



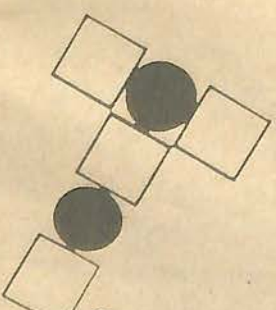
6



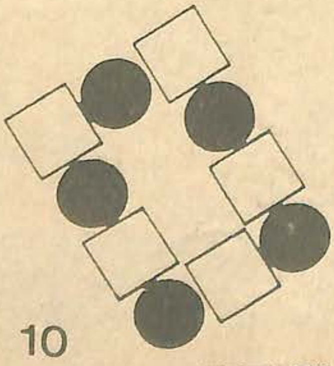
7



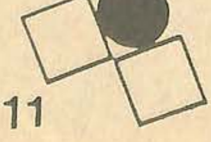
8



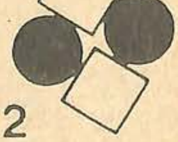
9



10



11



12

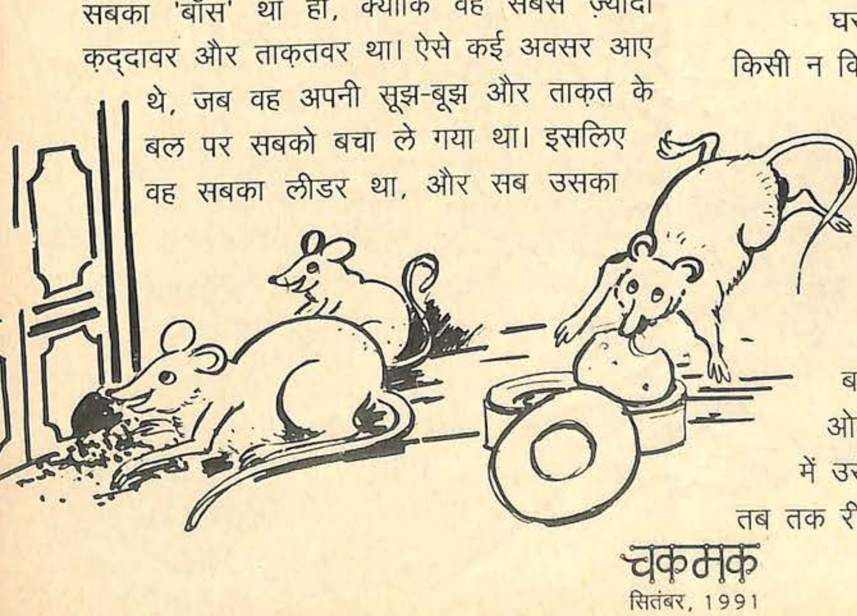
मीकू फंसा पिंजरे में



बाहर निकलने की तमाम कोशिशों के बाद मीकू को विश्वास हो गया कि यह भी इस घर के लोगों की एक चाल है।... जिसका शिकार वह अनजाने-अनचाहे हो गया था। यों तो उसे फंसाने के अनेक षड़यंत्र रचे जा चुके थे पर हर बार वे लोग साफ़ बच निकलते। पर अब वास्तव में ही मीकू फंस चुका था और मीकू ही क्यों, उसके लगभग तीन चौथाई दर्जन और साथी भी तो थे जो मुंह फंसा-फंसाकर और कभी दांतों का ज़ोर लगाकर बाहर निकलने की नाक़ामयाब कोशिश कर रहे थे।

दाएं-बाएं, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे जिधर देखो उधर, मज़बूत तारों का ऐसा जाल था जिस पर दांतों का कोई असर न होता था। उन दांतों का जिस पर मीकू को बड़ा गर्व था। क्योंकि कपड़े जैसी मुलायम चीज़ से लेकर लकड़ी जैसी कठोर चीज़ भी उसके दांतों से नहीं बच पाई थी। उसने एक बार रातों-रात किवाड़ के एक कोने को कुतर डाला था। क्योंकि किवाड़ लगने पर उनका वह रास्ता बिल्कुल बंद हो जाता था जिससे वो राशन लाते थे। सारी रात 'कटर-कटर' होती रही, पर किसी ने भी 'हट-हुश्' करने के अलावा कुछ नहीं किया...।

मीकू बड़े सोच में पड़ा याद करता है कि उसने आज तक एक रौबदार और सम्मान भरा जीवन बिताया था। अपने साथियों में तो ख़ैर वह सबका 'बॉस' था ही, क्योंकि वह सबसे ज़्यादा क़द्दावर और ताक़तवर था। ऐसे कई अवसर आए थे, जब वह अपनी सूझ-बूझ और ताक़त के बल पर सबको बचा ले गया था। इसलिए वह सबका लीडर था, और सब उसका आदेश मानते थे। पर वैसे भी न मानने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता, क्योंकि उसका एक ही फ़ौलादी थप्पड़ किसी को भी दिन में तारे दिखा सकता था।



घर भर में भी उसका ख़ौफ़ कम न था। किसी न किसी वजह से घर का हर सदस्य उसकी चालाकी और आतंक का लोहा मानता था। रीतू तो उससे बेहद डरती। यहां तक कि अकेले में कभी चौके या किसी कमरे में नहीं जाती। एक बार ताक़ से आले में छलांग लगाते वक्त वह रीतू के सिर पर गिरकर बालों में उलझ गया था। कभी गर्दन की ओर दौड़े, कभी कान में झांके। हड़बड़ाहट में उसे पूरे एक चौथाई मिनट में रास्ता मिला। तब तक रीतू की चीख़ें रोने में बदल गईं और रीतू

में समा गया सदा के लिए डर......। आज भी वह उसे 'मोटा भैंसा' कहती है जिसे सुनने में मीकू को बहुत मज़ा आता है, वह और तेज़ी से उछल-कूद करने लगता।

अम्मा उससे बहुत परेशान थीं, क्योंकि वह उनकी सूनी कोठरी में खूब हड़कंप मचाता। रात में तो उसका आतंक ज़्यादा बढ़ जाता, जब सोती हुई अम्मा के ऊपर से बीसों बार गुज़रता। अम्मा उसे गाली देतीं, लाठी खटखटातीं और चिल्लातीं, "अरे गोलू, कोई उपाय नहीं है क्या इस 'सांड' का?"

गोलू उससे खिसियाया हुआ था क्योंकि मीकू के मांमले में उसकी सारी चतुराई धरी की धरी रह गई थी। चूहे पकड़ने में वह सिद्धहस्त माना जाता था। लेकिन हाथ में डंडा पकड़े, एक हाथ में कपड़ा लिए, एक तरफ मां को खड़ा किए, मोर्चे पर डटे हुए घंटों बीत जाते, पसीना-पसीना हो जाते। कभी इस संदूक को पीटते, कभी उधर कनस्तर खटखटाते, कभी अलमारी के पीछे झाड़ू फटकारते, कभी आले में रखे डिब्बे गिराते, पर मीकू आराम से किसी कोने में छुपा उनकी परेशानी का आनंद लेता और उनको ज़रा असावधान व थका जानकर अचानक उछलकर ऐसा भागता कि....मां 'उई' करके चीख़ पड़ती और गोलू भी भौचक्का रह जाता।

वैसे यह बात काफ़ी गोपनीय है। लेकिन बात चली है तो कहे बिना रहा नहीं जाता कि मीकू से डरते दादा जी भी थे। क्योंकि एक बार उनकी बनियान में घुसकर खासा तंग कर डाला था उन्हें। सारे कमरे में इधर-उधर दौड़ते फिरे थे...

'समय-समय की बात है'-मीकू सोचता है, 'कहां यह क़ैद और कहां वह दौड़, उछलकूद....जब भी मन आता अपने साथियों सहित वह चाहे जहां धावा बोल देता.... चाहे रोटियों का डिब्बा हो, सब्ज़ियों की डलिया हो, गेहूं की बोरियां हों, ज्वार बाजरे से भरी कोठियां हों, कपड़ों से लदी-फदी अलगनी हो या फिर किताबों से भरी अलमारी..... कुछ भी उनकी पहुंच से बाहर न था। रात भर रसोईघर में धमा-चौकड़ी मचाना.... बर्तन घसीटना या पटकना और गोलू की मां की रज़ाई पर सरपट दौड़ना उसके लिए खेल था। गोलू की मां की झिड़कियों पर वह रीझता था,'

"मचा ले चाहे जितना उधम 'मुटल्ले'। जिस दिन हाथ आ गया पूसी को ही कलेवा न कराया तो नाम नहीं.....!."

मीकू ऐसी बेजान धमकियों से डरने वाला नहीं था। वह आंखों की पुतलियां नचाता, मूछें फड़काता, उनके गुस्से का आनंद लेता, आंख दबाकर अपने डरे साथियों को भी बेफ़िक्र करता और अपनी कारगुज़ारियां जारी रखने का निर्देश देता। सुबह मां को रोटियां नाली में खोंसी मिलतीं, अध-कुतरे आलू-प्याज़ कहीं पूजाघर में मिलते, तो कहीं पुदीने की क्यारियों में। कभी गोलू की चड्डी बिल में खुसी मिलती, तो रीतू की बनियान कनस्तर के पीछे। मालू कहती, "दीदी ये हमारे, कपड़ों से ज़रूर अपने लिए रज़ाई-गद्दे बनवाते होंगे।"

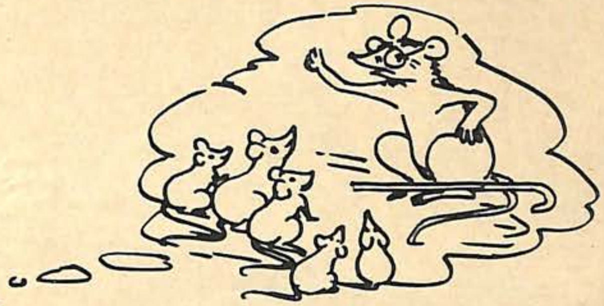
"ओह......" मीकू ने गहरी आह भरी। बाबा ने उसे सब कुछ सिखाया था। कैसे आने वाले ख़तरे से सावधान रहा जाए.... क्यों रास्ते में मिली आटे की गोलियों से बचा जाए और 'पूसी' के दांव पेंचों को किस तरह असफल बनाया जाए। यह सब बाबा सिखा चुके थे। पूसी उसको पाने की तमन्ना मन ही मन में शायद दफ़न कर चुकी थी, क्योंकि न तो मीकू उसके झपट्टों में आया और न ही उसकी लच्छेदार बातों में...। उसकी इस होशियारी पर बाबा गर्व भी करते थे।

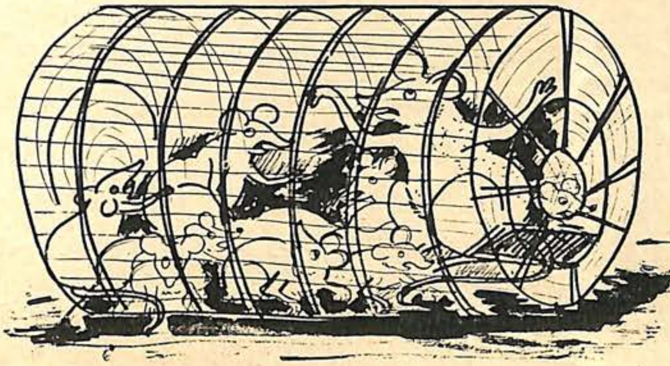


किंतु इस घोटाले से मीकू हतप्रभ था। यह कोई नया तरीक़ा था,

जिसका ज्ञान शायद बाबा को नहीं था, वरना वे ज़रूर बताते। उन्होंने उस जाल का ज़िक्र कई बार किया था, जिसे कबूतर ले आए थे। बाबा ने अभिमान से बताया कि किस तरह जाल काटकर उन्होंने अपनी दोस्ती का फर्ज़ निभाया था।

और बाबा के द्वारा 'वनराज' को जाल से





आज़ाद कराने की कहानी तो बच्चा-बच्चा जानता है। आज भी मीकू के बाबा की यह कहानी किताबों में सचित्र छपती है। वे कहते थे, "इंसान को ऐसा कार्य करना चाहिए कि लोग याद करें।"

'अफ़सोस' वह बाबा की इस सीख को अमल में नहीं ला सका। आज वह अपनी ज़रा-सी नासमझी के कारण अकेला नहीं बल्कि सारे साथियों के साथ इस कठोर कारावास में पड़ा था। उसका सिर चकराता है- वह भी क्या करता स्थिति ही ऐसी बनी कि उसे सोचने का मौका ही न मिला।

जब रात के सुरक्षित वातावरण में वे निश्चिंत होकर लुकाछिपी खेल रहे थे, तब अचानक उसकी नाक से ऐसी मीठी महक टकराई जैसी मौसेरी बहन चिक्की के साथ एक रेस्टोरेंट में टकराई थी। उस मीठी महक वाले टुकड़े को चिक्की ने बिस्कुट बताया था और एक प्लेट से लाकर खिलाया भी था। बिल्कुल वही महक..... मीकू इसे ईमानदारी से स्वीकारता है, कि उस समय उसका मुंह पानी से लबालब भर गया था और वह उसी दिशा में दौड़ा था, जब उसे लगा कि वह गंध पास ही है, अचानक उसके नीचे का तल झुका और वह सीधे ही अपनी मनचाही चीज़ पर पहुंच गया था। अभी ढंग से मुंह भर कुतर भी न पाया कि सारे साथी भी उसी तरफ आ धमके थे। किसी को टुकड़ा मिला किसी को नहीं। पर दुख तो इस बात का हुआ कि उनके निकलने का रास्ता अपने आप ही, जाने कैसे, बंद हो गया था। अब वे सब इस कैद में थे जहां न दाना था न पानी। कुछ छोटे साथी तो ख़तरे से वाक़िफ़ भी नहीं थे। वे मज़े में इधर-उधर कुछ सूंघते-ढूंढते फिर रहे थे। पर बड़े गहरी चिंता में अपना नुकीला मुंह पंजों पर टिकाए बैठे थे।

'सब संयोग-कुयोग की बात है' मीकू सोचता है, 'बुरा वक्त आने पर सारी सूझबूझ ग़ायब हो जाती है।'

"ओ रीतू, मालू, भोलू.... सब लोग यहां आओ।" सहसा मीकू की तंद्रा टूटी। उजाले के साथ ही कमरे में गोलू आ धमका था।"देख तो रीतू, एक नहीं, दो नहीं... .. पूरे दस चूहे। वाह! मज़ा आ गया।"

"ओ भैया! यह गोलू की बड़ी बहन थी, "ये एक-दूसरे की ओट में कैसे घुसे जा रहे हैं। शायद ठंड लग रही है।"

"नहीं दीदी, ये तो मुंह छुपा रहे हैं कि कहीं हम इनका फ़ोटो खींचकर अख़बार में न छपवा दें....।" और खुलकर हंसी। मीकू ने सोचा ये लोग इतना भी नहीं समझते कि मजबूर लोगों का इस क़दर मज़ाक उड़ाना बुरा है। वह तो किसी दूसरे ख़्याल से ही साथियों के पीछे छुप रहा था। सब उसी को लेकर मज़ाक कर रहे थे।

"कहिए मोटूमल जी! क्या-क्या अंट-शंट खाते रहे हो, और बैठे-बैठे मोटापा बढ़ाते रहे हो। क्या आप नहीं जानते कि मोटे और आलसी लोगों को 'हाई ब्लड प्रेशर' जैसी बीमारियां हो जाती हैं, वे चलने-फिरने और खाने-पीने तक को तरस जाते हैं....। ख़ैर, आप चिंता न करें.... हमारे गोलू

डाक्टर आपकी उचित ढंग से 'डायटिंग' करवा देंगे। क्यों गोलू जी?"

मीकू का चेहरा गुस्से के मारे लाल हो गया। होंठ कांपने लगे और मूंछें अधिक तनकर फड़क उठीं। इतना अपमान सहने का आदी वह कभी नहीं रहा।

लेकिन आज वह कितना मजबूर है। इन बेशर्म और अशिष्ट लड़कों का वह कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता था। वे उससे बेहद बुरा बर्ताव कर रहे थे। कोई पूंछ को खींच रहा था, कोई निर्दयता से कोंच रहा था तो कोई उनके मुंह में लकड़ी ही ठूंसे देता था। सबसे ज़्यादा अखरने वाली बात की थी गोलू ने। उसने पिंजरे की तरफ पूसी को ही हुड़का दिया। वो तो बच गए तारों की बदौलत वरना......। फिर भी एक साथी की पीठ पर खरोंच आई, खुद उसकी कनपटी पर ही चोट आ गई और कुछ साथियों के नीचे की तो ज़मीन ही गीली हो गई। सबके दिल बुरी तरह धड़क उठे। छिः, यह भी कोई तरीक़ा है किसी को सताने का? गोलू इसे मज़ाक कह सकता है पर मीकू इसे बेहद अमानवीय और शर्मनाक हरक़त मान रहा था।

सारे दिन वे सबके लिए नुमाइश बने रहे। कोई आकर अचंभा प्रकट करता, कोई चुटीली फब्तियां कसता तो कोई 'हराम की खाने' का आरोप मढ़ता। मीकू सब कुछ चुपचाप सुनता रहा। उसने इतनी बुरी दशा का अनुभव पहली बार किया था। किसी ने भी उनके पेट का हाल-चाल नहीं पूछा था। उसने पहली बार ही जाना कि बाबा ठीक ही कहा करते थे-'बेटे, यह मानव बड़ा ख़ुदग़र्ज़ है। वह अपना ही राज चाहता है सब जगह। दूसरी जाति के प्राणियों को वह या तो ग़ुलाम बनाकर रखना चाहता है या मार देना चाहता है। कभी चारे-पानी का, कभी स्वादिष्ट चीज़ों का तो कभी बनावटी प्यार का लालच देकर भोले जीवों को फंसा लेता है। हम तुम तो कुछ नहीं, वह शेर, हाथी व भालू जैसे बड़े और ताक़तवर जानवरों को भी अपने क़ब्ज़े में कर लेता है। फिर ख़ूब पैसा कमाता है।

'ओह' ...मीकू का दिमाग़ काम नहीं करता। उधर उसके साथी भी उससे लगातार शिकायतें करने लगे थे।

"अरे मीकू भैया यों सोचने से काम न चलेगा। निकलने का तरीक़ा सोचो....या इसी में सड़ मरने का विचार है?"

"ख़ामोश !", - मीकू दहाड़ा, "तुम लोगों को मुझ पर विश्वास नहीं? तुम तो मुसीबत में हो और मैं मज़े कर रहा हूं? फिर जल्दी ही खुद को संयत करके बोला- दोस्तों, हमें धीरज नहीं खोना चाहिए। देखो--- सुनो.... वे लड़कियां जो खाना खा रही हैं, हमारे बारे में ही बातें कर रही हैं।

"दीदी, ये सब भूखे होंगे।"

"और क्या!" बेध्यानी से बड़ी लड़की ने कहा।

"इनको ज़रा सी रोटी डाल दूं?"

"नहीं," सहसा बड़ी लड़की की आवाज़ कठोर हो गई, "तुम भूल गई कि इन्होंने तुम्हारी नई फ्रॉक काट डाली है। मैं इनके बारे में कुछ नहीं जानती सिवा इसके कि ये नंबर एक के धूर्त और चालाक हैं। इनके साथ कोई भी रियायत करना बेमानी है।"

मीकू ने ग़ौर से देखा कि उस प्यारी सी नन्ही लड़की का चेहरा बुझ-सा गया है जिसका नाम मालू है, जिसकी आंखें बड़ी और नीली हैं तथा जिसके मुलायम बाल कंधे पर झूल रहे हैं। वह पिंजरे की ओर ध्यान से देख रही थी। मीकू को उसकी आंखों में हमदर्दी और प्यार दिखा।

जब मालू उठकर पिंजरे के पास आई और फ्रॉक में से रोटी निकाल कर पिंजरे में डाली तो मीकू का दिल भर आया। उसने भर्रायी आवाज़ में कहा, "मालू दीदी, तुम्हारा यह बर्ताव हम कभी नहीं भूलेंगे। क्या तुम हमारी दोस्ती को स्वीकार करोगी?"

"दोस्ती?" मालू के होंठ कांपे, "तुम मुझे बेशक अच्छे लगते हो पर अब तुमसे दोस्ती करने का बिल्कुल विचार नहीं है मेरा। क्या तुम नहीं जानते कि तुमने मेरी सबसे अच्छी और महंगी फ्रॉक काट डाली है, जिसे मेरे पापा बड़े शौक़ से लाए थे।"

"हम बहुत शर्मिंदा हैं मालू दीदी," मीकू बेहद कोमल आवाज़ और सभ्य अंदाज़ में बोला,

"अगर आपने हमें छुड़वा दिया तो यह एहसान हम ज़िंदगी भर नहीं भूलेंगे, फिर हम ज़रूर कभी आपके काम आएंगे...." मीकू ने अंतिम वाक्य आपने बाबा का फिट कर दिया और आशा भरी नज़रों से मालू की ओर देखा।

"अरे मालू दीदी....अगर आपने हमें छुड़वा दिया तो आपके कपड़ों को मुंह भी नहीं लगाएंगे", यह मीकू का साथी था।

"मैं क्या कह सकती हूं। गोलू भैया जाने....तुम्हें माफ़ वो ही कर सकते हैं। वैसे मेरे भैया बहुत अच्छे हैं, तुम्हारे साथ बुरा बर्ताव नहीं करेंगे। पर कब छोड़ेंगे यह मैं नहीं बता सकती।"

और वह मीकू की बात सुने बिना ही चली गई। अब मीकू के मन की वह आशा भी ख़त्म हो गई जो मालू की बात सुनकर जागी थी। उनके जीवन मौत का फ़ैसला जब गोलू के हाथ में है तो कोई भी आशा करना बेकार है। मालू क्या जाने उसे, जितना हम जानते हैं। अब क्या करें- लेकिन सिवा वक्त़ का इंतज़ार करने के हम कर भी क्या सकते हैं?



अगले दिन सुबह गोलू दोस्तों की भीड़ के आगे-आगे पिंजरा उठाकर चला तो मीकू ने अपने जीवन की आशा बिल्कुल छोड़ दी। क्योंकि उसने गोलू की गुप्त योजना सुन ली थी। वे उन्हें नदी के पानी में डुबा-डुबा कर अधमरा करके उस मैदान में डालने वाले थे जहां गिद्ध, चीतों, व कुत्तों का जमाव रहता है। मालू को तो शायद इसकी भनक भी नहीं मिली थी।

अपनी मौत को इतने नज़दीक व सुनिश्चित पाकर मीकू का दिल एक बार फिर कांप उठा। उसने सबको याद किया, अपने मां-बाप को जिन्होंने उसे पाला पोसा और प्यार दिया। बाबा को......... जिन्होंने उसे स्वाभिमानी और होशियारी से जीना सिखाया। उसे याद आए अपने कारनामे जो उसने इन्हीं साथियों के साथ किए थे। और उसे याद आया अपना लंबा, नरम-नरम गर्मी वाला आरामदेह घर, जिसकी नक़ल करके आदमी ने रेल मार्ग बनाए हैं, बाज़ार लगाए हैं। मीकू के होठों पर पल भर को मुस्कान आई-'यह आदमी भी खूब है। चूहों की नक़ल करके ज़मीन के अंदर रहने लगा है और अब सीप-घोंघों की नक़ल करके समुद्र में भी बस्तियां बनाएगा।'

लेकिन यह परिहास उसके मन को ज़्यादा देर तक न बहला सका, क्योंकि अगले ही क्षण वह पिंजरे सहित ठंडे पानी में डुबा दिया गया था। सारा शरीर थरथरा उठा। उसे पानी से बेहद चिढ़ थी इसलिए वह महीनों तक नहाता भी नहीं था। लेकिन अब एक बार... दो बार... तीन बार... उफ़ कितनी निर्दयता से वे दुष्ट लड़के उनकी मजबूरी का लाभ उठा रहे थे। उनकी परेशानी से आनंद ले रहे थे, हंस रहे थे। दुर्दशा पर तालियां बजा रहे थे,- "हां गोलू दादा, एक बार और.....।"

उसके सारे साथियों में भगदड़ मच गई। वे व्याकुलता से एक दूसरे की शरीर की ओट लेना चाह रहे थे और कभी बाहर निकलने की धुन में तारों से भी टकरा रहे थे। बाल कांटे की तरह तन गए थे और सबके शरीर बुरी तरह हिल रहे थे।

ऐसे वक्त़ में मीकू की आंखें मालू को तलाश रहीं थीं। वह होती तो शायद इतना ज़ुल्म तो नहीं होने देती।

मालू को तलाश, गोलू की आंखें भी रहीं थीं। वह इतने मज़ेदार दृश्य का आनंद अकेला नहीं ले सकता था। उसे वह अपनी हर खुशी की हिस्सेदार बनाता था। क्योंकि वह उसकी सबसे छोटी और प्यारी बहिन थी। वह मालू की हर बात मानता है, वह उसके गुड्डे-गुड़िया की कार बना देता है और ब्याह के अवसर पर दोनों हाथ मुंह से लगाकर "तू ऽ ऽ......तू ऽ ऽ ...."करता बैंड मास्टर भी बन जाता है। यह पिंजरा भी वह उसी के कहने पर



लाया था।

सहसा मीकू व गोलू दोनों की आंखें चमकीं...... मालू चुपचाप पेड़ के पास खड़ी थी। गोलू ने उसे पुकारा, "मालू ऽऽ। यहां आ जा देख... कितना मज़ेदार खेल है।" मालू अपनी जगह से हिली भी नहीं। मीकू ने देखा, गोलू का ध्यान अब केवल मालू पर था। वह पिंजरा वहीं छोड़ मालू के पास दौड़ा, लेकिन उसकी पलकों के छोर गीले देखकर वह चौंक पड़ा, "मालू! क्या बात है? क्या यह सब तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा?" मालू ने सिर हिलाकर मना किया।

"लेकिन यह पिंजरा लाने की सलाह तो तुम्हीं ने दी थी।"

"हां, दी थी... पर इतना सताने को कब कहा था? तुम तो उन्हें मारे ही डालते हो.... बेचारे....!" मालू ने एक पिघली निगाह पिंजरे पर डाली।

"तुम तो बेकार दिल छोटा कर रही हो। यह तो अपना-अपना दांव है। जब उनका लगा उन्होंने मनमानी की.... जब हमारा लगा है..... हम। इसमें एतराज़ वाली बात ही क्या है? गोलू ने अपनी सफ़ाई दी, लेकिन आवाज़ इतनी मज़बूत नहीं थी।

"मेरी बात नहीं मानते। मैं किसी से बात नहीं करूंगी, मेरी सबसे कुट्टी। गोलू से भी...." और वह पैर पटकती चल दी।

मीकू अब तक काफ़ी संभल चुका था और उनके झगड़े को चुपचाप देख रहा था। गोलू ने मुस्कुराकर अपने साथियों को देखा और मालू के पीछे दौड़ा और लपककर उसका रास्ता रोक लिया। फिर जबरन गोद में उठाकर पिंजरे के पास ले आया। मालू मचलती रही।

"हां अब रोना बंद कर मालू! बता, क्या बात है?"

"मुझे कोई बात नहीं करनी तुमसे। तुम सब एक से हो।"

"अच्छा बोलो क्या करें..... इन्हें छोड़ दें? बोलो?" गोलू, मालू की आंखों के बिल्कुल पास मुस्कुराया।

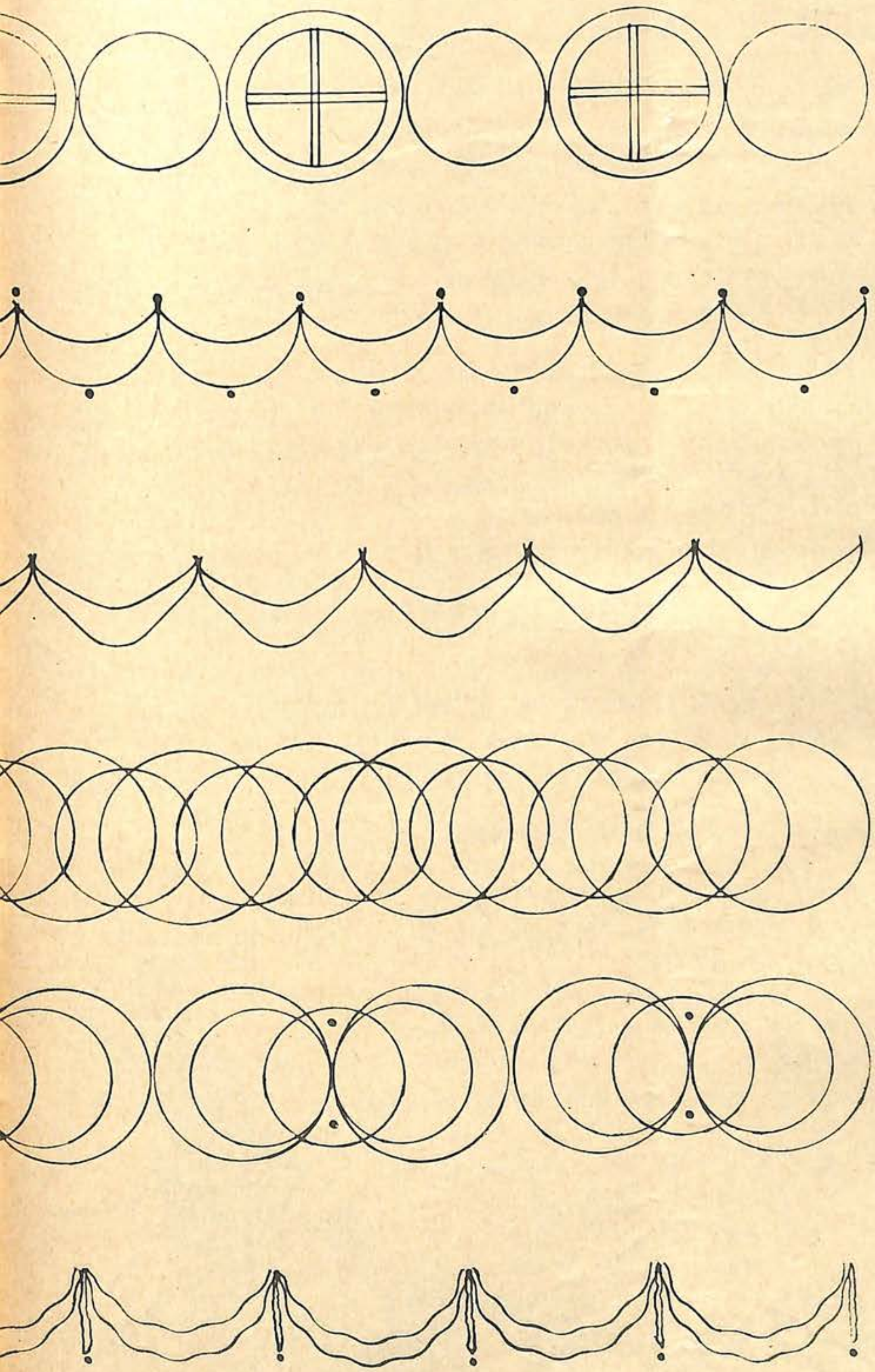
अपने भैया का इस तरह समर्पण देख उसके चेहरे पर चमक आई। धीरे-धीरे हंसी भी आई।

"ओ मर गए," गोलू ने मालू के होठों की मुस्कान देखकर माथा पीटा, "हमें क्या मालूम था कि मालू के दोस्तों में चिड़िया, मोर, बिल्ली, पिल्लों और मुर्गों के साथ चूहों का नाम भी जुड़ गया है?"

मालू शरमा गई पर उसकी आंखों में तैरती खुशी किसी से छुपी न रही।

□ **गिरिजा कुलश्रेष्ठ**
चित्र : सुचिता राऊत

सिक्कों से डिज़ाइन



रुपए-पैसे से क्या नहीं हो सकता। पर क्या तुम कोई ऐसी चीज़ बता सकते हो जो सिक्कों के बस की तो हो पर रुपयों की नहीं? पड़ गए न चक्कर में!

अच्छा यहां बने डिज़ाइन देखो। ये सब सिक्कों से बने हैं।

इन डिज़ाइनों के लिए पांच से लेकर पचास पैसे तक के सिक्के का उपयोग किया गया है। तुम भी बना सकते हो। सिक्कों के अलावा तुम्हें कागज़, पेंसिल और स्केल की ज़रूरत होगी।

सबसे पहले कागज़ पर पेंसिल से एक सीधी लकीर हल्के से खींच लो। यह लकीर डिज़ाइन को सीधा बनाने में मदद करेगी। अब सिक्के को लकीर पर रखकर बाएं हाथ की एक अंगुली से दबाकर चारों ओर (या जितने हिस्से में चाहो, यह डिज़ाइन पर निर्भर करेगा) पेंसिल से सिक्के की आकृति बना लो।

बस इसी तरह सिक्कों को थोड़ा आगे-पीछे, बाएं-दाएं खिसकाकर नई-नई डिज़ाइन बना सकते हो।

भारत में धातु मुद्रा-सिक्के

भारत में बहुत पहले से धातु के बने सिक्कों का प्रयोग किया जाता रहा है। इतिहासकार बताते हैं कि मुग़लकाल के पहले सोने तथा चांदी के सिक्के बनाए जाते थे। मुग़लकाल में भी इनका प्रचलन जारी रहा। सोने की मुहर, चांदी का रुपया और तांबे का दाम प्रचलन में थे। मुग़ल शासन के पतन के बाद भारत में कई छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गए थे, इनके अपने-अपने सिक्के थे। कहा जाता है कि जिस समय ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना साम्राज्य फैलाया उस समय देश भर में 994 प्रकार के विभिन्न वज़न वाले सोने तथा चांदी के सिक्के चलन में थे। इनका आपस में परिवर्तन, वज़न व उनमें शुद्ध धातु की मात्रा के आधार पर साहूकारों द्वारा किया जाता था।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी ओर से निश्चित वज़न व शुद्धता के सोने तथा चांदी के सिक्के जारी किए । कंपनी ने इन दोनों सिक्कों के बीच का आपसी अनुपात क़ानूनी आधार पर तय कर दिया था। सन् 1818 में कंपनी ने सोने के सिक्कों के स्थान पर चांदी के सिक्के का प्रचलन शुरु किया और इसे ही प्रामाणिक सिक्का घोषित किया। पर सोने का सिक्का भी चलन में रहा। सन् 1835 में एक करेंसी एक्ट बनाया गया और सारे देश के लिए केवल चांदी का रुपया ही एकमात्र क़ानूनी मुद्रा घोषित की गई। पर उनकी ढलाई टकसाल में कोई भी करवा सकता था। चांदी के सिक्के एक रुपया, अठन्नी तथा चवन्नी के नाम से प्रचलित थे। सोने के सिक्कों की ढलाई सिर्फ़ सरकार ही करवा सकती थी।

उस समय एक तोला-चांदी का एक रुपया होता था। एक रुपए में 16 आने और एक आने में 4(पाई) पैसे होते थे। इसी तरह चवन्नी में 16 और अठन्नी में 32 पैसे होते थे।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय सिक्कों की बढ़ती मांग से चांदी की कमी होने लगी, तो सिक्कों में चांदी की मात्रा कम कर दी गई। साथ ही निकिल आदि धातुओं के सिक्के जारी किए गए। बाद में सरकार ने जार्ज पंचम, जार्ज षष्टम, एडवर्ड सप्तम और महारानी विक्टोरिया की छाप वाले चांदी के सिक्कों को चलन से हटा दिया।

1942-43 में रेज़गारी की इतनी अधिक कमी हो गई कि लोग डाकटिकटों का उपयोग करने लगे।

1 अप्रैल, 1957 को भारत सरकार ने दाशमिक प्रणाली अपना ली। इस प्रणाली में एक रुपए में 100 पैसे, अठन्नी में 50 और चवन्नी में 25 पैसे माने गए। यही प्रणाली आज भी जारी है। भारत सरकार समय-समय पर विभिन्न सिक्के जारी करती रहती है।

कुछ सिक्के ऐसे भी जारी किए जाते हैं जो स्मृति के रूप में होते हैं। ऐसे पहले सिक्के 1969 में गांधी शताब्दी पर जारी किए गए। इसके अतिरिक्त विशेष अवसरों पर भी सिक्के जारी किए जाते हैं, जैसे अंतर्राष्ट्रीय युवा वर्ष, बाल वर्ष, विश्व खाद्य दिवस आदि।

सिक्कों में तुम्हें अधिक रुचि हो तो प्रचलित सिक्कों को ध्यान से देखो। तुम्हें अलग-अलग डिज़ाइन तथा छाप वाले सिक्के मिलेंगे।

क्यों.....क्यों....12

मुनिया के सवालों के जवाब खोजते-खोजते अब चकमक के पाठकों के दिमाग़ में भी क्यों..क्यों... का कीड़ा कुलबुलाने लगा है। हमें लगातार नए-नए सवाल मिल रहे हैं। सब सवालों की चर्चा इस कालम में करना संभव नहीं है। और फिर यह उद्देश्य भी नहीं है। हम तो यह चाहते हैं कि ऐसे सवालों पर तुम अपने दोस्तों, परिचितों और परिवार वालों से अधिक से अधिक चर्चा करो। ख़ैर...

इस बार ऐसे ही दो सवाल यहां दे रहे हैं जो हमें **संचिता खण्डेलवाल** ने हरदा से लिखकर भेजे हैं-

1. घर में जूते-चप्पल उल्टे रखने पर डांट पड़ती है। सब कहते हैं, उल्टे मत रखो, सीधे करके रखो। पूछो कि, क्यों? तो जवाब मिलता है, जूते-चप्पल उल्टे रखने से झगड़ा होता है। अब हमें तो समझ नहीं आता कि इससे झगड़े का क्या संबंध ?
2. इसी तरह शाम के समय झाडू निकालने से मना किया जाता है, पर क्यों?

शायद तुम्हें भी ये बातें सुननी पड़ी हों। तुम क्या सोचते हो? क्या जानते हो ? लिख भेजो।

अपने उत्तर में हमें **15 नवंबर, 1991** तक भेज सकते हो।

ध्यान रहे यह ज़रूरी नहीं है कि हर पुरानी प्रथा, परंपरा या रीतिरिवाज़ दकियानूसी ही हो, उसके पीछे कोई तार्किक आधार भी हो सकता है। आधार एक या एक से अधिक भी हो सकते हैं। पर यह भी आवश्यक नहीं है कि हर परंपरा या प्रथा के पीछे आधार होगा ही।

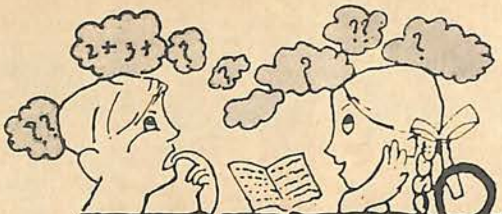
क्यों....क्यों...7 : पाठकों का जवाब

क्यों.....क्यों का सातवां सवाल यह था कि आंख या शरीर के अन्य किसी अंग के फड़कने में क्या सचमुच कोई संकेत होता है?

इस सवाल के जवाब में हमें 38 पत्र मिले हैं। इनमें से 17 पत्रों में अंग फड़कने के विभिन्न कारण बताए गए हैं, और कहा गया है कि उनमें शुभ-अशुभ जैसा कोई संकेत नहीं होता। लेकिन 21 पत्रों में इसे शुभ-अशुभ का सूचक माना गया है।

वास्तविकता यह है कि जब शरीर की मांसपेशियों का रासायनिक संतुलन गड़बड़ा जाता है तो उनमें संकुचन होने लगता है, जिससे पेशियां फड़कने लगती हैं। जब संतुलन ठीक हो जाता है तो पेशियां फड़कना बंद कर देती हैं। शायद तुम जानते होगे कि हिचकी भी इसी कारण से आती है। सीने और पेट के बीच बना डायफ़ाम मांसपेशियों के संकुचन के कारण अनियमित रूप से ऊपर-नीचे होने लगता है, जिससे हिचकी आने लगती है।

जिन पाठकों ने जवाब भेजे, उनके नाम हैं: सुगन राम गौड़, देसूरी, पाली। चेतनराम जाट, गोरी का बास, कमलेश अग्रवाल, मैंड। कैलाश चंद गंगवाल, चकवारा, जयपुर। प्रकाशचंद, नथड़ियास, भीलवाड़ा। कैलाश चंद शर्मा, चाइया, श्री गंगानगर। जमना प्रजापत, बीकानेर। **सभी राजस्थान**। नीतू श्रीवास्तव, महकुचा, जौनपुर। नवीन कुमार, बक्सरिया टोला, अयोध्या, **सभी उ.प्र.**। रमेश कुमार वर्मा,सुजापुर, महेंद्रगढ़, हरियाणा। कामेश्वर राव, **दिल्ली**। अभिनय कुमार सिंह, चमरहा, वैशाली। अखिलेश कुमार, लखनीवीघा, पटना। राजूकुमार सिंह, कसाप, भोजपुर। **सभी बिहार**। रीता अग्रवाल, बृजेश काबरा, आनंद मोहन, मुरतजा हुसैन, पवन अग्रवाल, सचिन खले, विरेंद्र मोरी, अमित कुमार, तुलसीदास अड़वानी, सत्येंद्रसिंह, हरदा, जिला होशंगाबाद। मोहनसिंह, परागसिंह, काजलसिंह गहलौत, शुजालपुर। श्यामसुंदर कोसे, खोरपा, दुर्ग। रिखी राम, बांकी मोगरा, बिलासपुर। कुबेर शरण द्विवेदी, छपड़ौर, शहडोल। अभिषेक जीनवाल, इंदौर। प्रभात कुमार, रमाकांत कुमार, जैथारी। रविशंकर नायक, कोतरा, रायगढ़। चरनसिंह कंवर, पिड़िया, बिलासपुर। प्रवीण कुमार श्रोत्रिय, शेखपुरा, खंडवा। पुनीतराम वर्मा, देव शरण यादव, रायपुर। **सभी म.प्र.**।



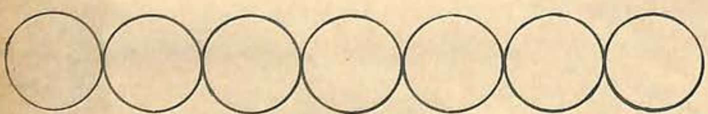
माथापच्ची

(1)

एक औरत अपने बाग के अमरूद बेचने बाज़ार गई। उसने पहले ख़रीददार को कुल अमरूदों में से आधे अमरूद तथा एक अमरूद का आधा हिस्सा बेचा। दूसरे को उसने बचे हुए अमरूदों में से आधे और एक अमरूद का आधा बचा हिस्सा बेचा। बेचने का क्रम इसी तरह चलता रहा। सातवें और आख़िरी ग्राहक को बचे हुए अमरूद और एक अमरूद का आधा हिस्सा बेचने पर उसकी डलिया ख़ाली हो गई। बताओ उसके पास शुरु में कितने अमरूद थे?

(2)

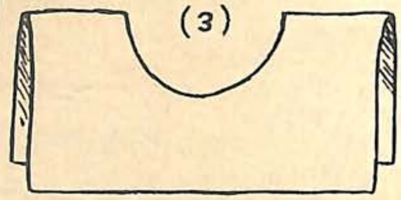
यहां सात खाने बने हैं। बाईं ओर वाले तीन खानों पर तीन अठन्नियां रख लो और दाईं ओर वाले तीन खानों पर चवन्नियां। अठन्नियों-चवन्नियों की जगह तुम पांच या दस पैसे के सिक्कों का उपयोग भी कर सकते हो। बीच का खाना ख़ाली रहेगा।



अब कुछ नियमों का पालन करते हुए अठन्नियों और चवन्नियों की जगह आपस में बदलनी है। पहला नियम यह है कि कोई भी अठन्नी सिर्फ़ दाईं ओर खिसक सकती है, जबकि चवन्नी बाईं ओर। दूसरा नियम यह है कि एक चाल में एक ही सिक्का खिसक या कूद सकता है। कूदने वाला सिक्का भी सिर्फ़ एक ही सिक्के को लांघ सकता है। हां, इस पर कोई रोक नहीं है, कि अठन्नी, चवन्नी को लांघे, या चवन्नी, अठन्नी को।

आख़िर में होना यह चाहिए कि अठन्नियां दाईं ओर आ जाएं और चवन्नियां बाईं ओर। अब करके देखो कि कितनी कम से कम चालों में तुम यह फेरबदल कर सकते हो।

(3)



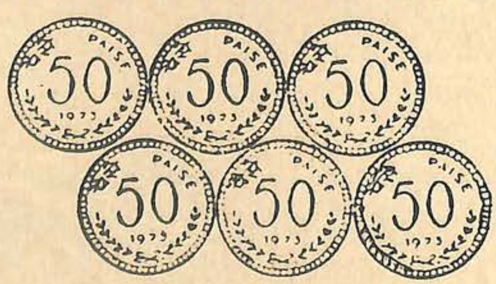
एक और दिमाग़ लड़ाऊ पहेली। काग़ज़ पर ठीक इतना बड़ा गोला काटो कि उसमें से चवन्नी निकल जाए। लेकिन अब इसी गोले में से अठन्नी निकालकर बताओ तो जाने।

(4)

हमारे एक दोस्त ने एक साइकिल 600 रु. में ख़रीदी। कुछ दिन उन्होंने साइकिल चलाई, फिर उन्हें लगा, ज़्यादा काम नहीं आ रही, तो 700 रु. में बेच दी। कुछ दिनों बाद फिर ज़रूरत महसूस हुई, तो उन्होंने वही साइकिल 800 रु. में ख़रीद ली। कुछ समय बाद उन्हें फिर लगा कि साइकिल की ज़रूरत नहीं है, तो 900 रु. में बेच दी। ख़ैर...तब से हम तो इस जोड़-बाकी में पड़े हैं कि उन्हें लाभ हुआ या हानि? चलो तुम्हीं बता दो।

(5)

कोई भी 6 सिक्के लो उन्हें चित्र में दिखाए तरीक़े से जमाओ। अब इस आकृति को गोलाकार आकृति में बदलना है। शर्त यह है कि एक बार में एक ही सिक्का हटाया जा सकता है और जब वह दुबारा रखा जाए तो दो सिक्कों को छू रहा हो। गोलाकार आकृति भी ऐसी होनी चाहिए कि उसके बीच में एक सिक्का रखा जा सके। चुनौती यह है कि इसे कम से कम कितने सिक्कों को हटाकर बनाया जा सकता है?



(6)

एक मछली के सिर और पूंछ की लंबाई बराबर है। मछली की पूरी लंबाई 15 इंच है। यदि सिर की लंबाई दुगुनी होती तो सिर और पूंछ की लंबाई का जोड़ पूरी मछली की लंबाई के बराबर होता। अब बताओ सिर, पूंछ और शेष शरीर की लंबाई कितनी होगी?

(7)

एक रुपए वाले तीन सिक्के लो। काग़ज़ पर एक सरल रेखा खींचों। अब सिक्कों को रेखा के आसपास इस तरह रखना है कि दाईं ओर से दो सिक्कों की चित सतह दिखे और बाईं ओर से दो सिक्कों की पट सतह। है बहुत आसान थोड़ा दिमाग़ लड़ाओ।

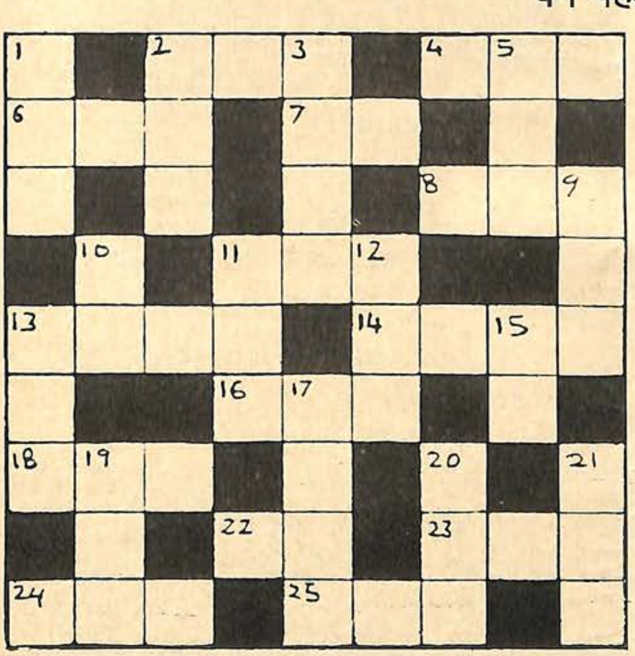
(8)

10 चवन्नियां लो (कोई और सिक्का भी ले सकते हो)। उन्हें एक लाइन में जमा लो। इन चवन्नियों की पांच जोड़ियां बनानी हैं। हर जोड़ी में दो चवन्नियां होंगी। जोड़ी बनाने से पहले दो शर्त सुन लो-



1. किसी भी चवन्नी की जोड़ी उसके बाएं या दाएं ओर की दो चवन्नियों को छोड़कर तीसरी चवन्नी के साथ ही बनाई जा सकती है।
2. अधिक से अधिक पांच चवन्नियों को उठाकर ये जोड़ियां बनानी हैं।

वर्ग पहेली-5



संकेत : बाएं से दाएं

2. नियम क़ानून (3)
4. पक्का नहीं (3)
6. प्रगट रजवाड़े में नाली (3)
7. दिन का हमला (2)
8. आभास होना, यानि यह लगना (3)
11. बेकार (3)
13. गांधीजी की अवज्ञा में नम्रता (4)
14. कच्चा-पक्का (4)
16. मुक़दमा दर्ज (3)
18. धनुष (3)
22. बिन ......के सुई किस काम की (2)
23. सैंकड़ा के बाद (3)
24. शांति, चैन का एक और पयार्यवाची (3)
25. शहर (3)

संकेत : ऊपर से नीचे

1. द्वंद युद्ध (3)
2. क्यों का उत्तर (3)
3. दालवान की गड़बड़ से बनी जंगल की आग (4)
5. रात का एक राग (3)
9. छोटे-छोटे टुकड़े, जैसे कि लाल रक्त ..(3)
10. सूरज (2)
11. लाभ (3)
12. अरहर (3)
13. घसड़ कसड़ में रास्ता (3)
15. उल्टी गप में पैर (2)
17. उल्टी टी.बी. के बाद गीत (4)
19. ज्ञात (3)
20. पानी पहुंचाने का एक माध्यम (5)
21. मगर उल्टा सीधा तपा (3)

वर्ग पहेली 4 : हल



भारत में नोट



एक पुराना भारतीय नोट

भारत में काग़ज़ी मुद्रा का प्रचलन अंग्रेज़ी सरकार ने किया था । सन् 1806 में सरकार ने बैंक ऑफ बंगाल खोला और इस बैंक ने काग़ज़ के नोट जारी किए। इसके बाद 1804 में बैंक ऑफ बंबई तथा 1843 में बैंक ऑफ मद्रास को भी नोट जारी करने का अधिकार दिया गया। इन नोटों पर भुगतान करना आवश्यक था। परंतु ये नोट साधारणतः कलकत्ता, बंबई, मद्रास शहरों में ही चलते थे। सरकार ने हर बैंक के लिए नोट जारी करने की एक सीमा भी तय कर रखी थी। हर बैंक को अपने द्वारा जारी किए गए नोटों के मूल्य का एक चौथाई धातु के सिक्कों के रूप में रखना पड़ता था। इन बैंकों पर सरकार का ही नियंत्रण था।

1861 में सरकार ने नोट जारी करने का अधिकार बैंकों से वापिस ले लिया और स्वयं नोट छापने लगी। शुरु-शुरु में पूरे देश को कलकत्ता,बंबई तथा मद्रास नाम से तीन क्षेत्रों में बांटा गया । 1910 में इन क्षेत्रों की संख्या 7 कर दी गई। प्रत्येक क्षेत्र से नोट जारी किए जाते और वे केवल इसी क्षेत्र में चलते। पर शासकीय भुगतान किसी भी क्षेत्र के नोटों से सरकार को किया जा सकता था।

सबसे पहले 10, 20, 50, 100, 1000 और 10,000 रुपए के नोट जारी किए गए। सन् 1903 में 5 रुपए का नोट जारी किया गया जो पूरे देश में चलता था। फिर 1910 में 10 और 50 तथा 1911 में 100 रुपए के नोट को पूरे देश के लिए मान्य घोषित कर दिया गया।

पहले विश्वयुद्ध के दौरान काग़ज़ी मुद्रा प्रणाली लड़खड़ा गई। जनता का काग़ज़ी मुद्रा से विश्वास उठ गया और बड़ी संख्या में लोग नोटों को सिक्कों में बदलने के लिए सरकारी ख़ज़ाने में लाने लगे। इस समय सरकार ने एक तथा दो रुपए के नोट जारी किए। इन्हें सिक्कों में बदला नहीं जा सकता था।

1 अप्रैल 1935 को भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना की गई। और तभी से रिज़र्व बैंक ने नोट जारी करने का काम अपने हाथ में ले लिया। तब से अब तक यह ज़िम्मेदारी रिज़र्व बैंक के पास ही है।

सरकार सिर्फ नोट जारी ही नही करती है बल्कि रद्द भी करती है। देश में बढ़ती चोर बाज़ारी और सट्टे को रोकने के लिए जनवरी 1947 में 500, 1000 और 10,000 रुपए के नोटों को अवैध घोषित कर दिया गया था। बाद में सरकार ने 1000, 5000 तथा 10,000 के नए नोट जारी किए। फिर 16 जनवरी 1978 की अर्धरात्रि से राष्ट्रपति द्वारा जारी एक अध्यादेश से इन नोटों को चलन से हटा लिया गया। अभी कुछ समय पहले ही सरकार ने 500 रुपए का नोट फिर से जारी किया है।

हाल ही में सरकार ने एक, दो और पांच रुपए के नोटों की छपाई बंद करने का निर्णय किया है। लेकिन अभी जो नोट चलन में हैं वे बने रहेंगे। इनके स्थान पर सिक्के बनाए जाएंगे।

भारत में नासिक तथा देवास में स्थित दो प्रेसों में नोट छापे जाते हैं। सालबीनी (पं. बंगाल) तथा मैसूर (कर्नाटक) में दो नई प्रेस स्थापित की जा रही हैं।

कटोरे में कटोरा . . . .

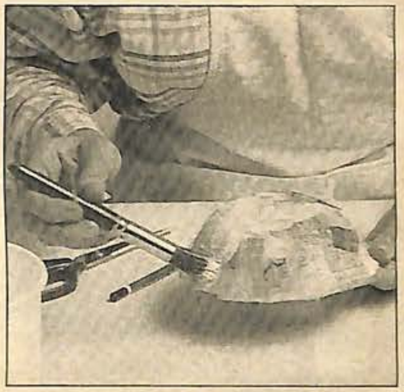
इस बार अपन कागज़ से ऐसी चीज़ें बनाना सीखते हैं जो तुम्हारे काम भी आए। यहां हम कागज़ का कटोरा बनाने का तरीक़ा बता रहे हैं। इसके लिए धातु या चीनी मिट्टी का बना कटोरा, अख़बार, गोंद, रेगमाल, खड़िया मिट्टी (गेरू या रामरज भी चलेगी) की ज़रूरत होगी।



1. सबसे पहले अख़बार के छोटे-छोटे टुकड़े कर लो और उन्हें पानी में भिगो लो। कटोरे को उल्टा रखकर उस पर सफ़ाई से अख़बार के गीले टुकड़ों की एक परत बिछा दो।



2. जब कटोरे पर एक परत चढ़ जाए तो उस पर गोंद का लेप कर दो।



3. अब कागज़ की एक और परत चढ़ाओ।



4. फिर से गोंद का लेप करो। फिर एक परत चढ़ाओ। कटोरे पर कागज़ की ऐसी चार-पांच एक-सी परतें चढ़ाने के बाद उसे किसी सुरक्षित स्थान पर सूखने के लिए रख दो।



5. सूखने में कम से कम 24 घंटे तो लगेंगे। जब वह सूख जाए तो सावधानी से कागज़ से बने कटोरे को असली क़टोरे से अलग कर लो।



6. अगर कागज़ के कटोरे की किनोर टेढ़ी-मेढ़ी हो तो उसे कैंची से काटकर एक-सी कर लो।

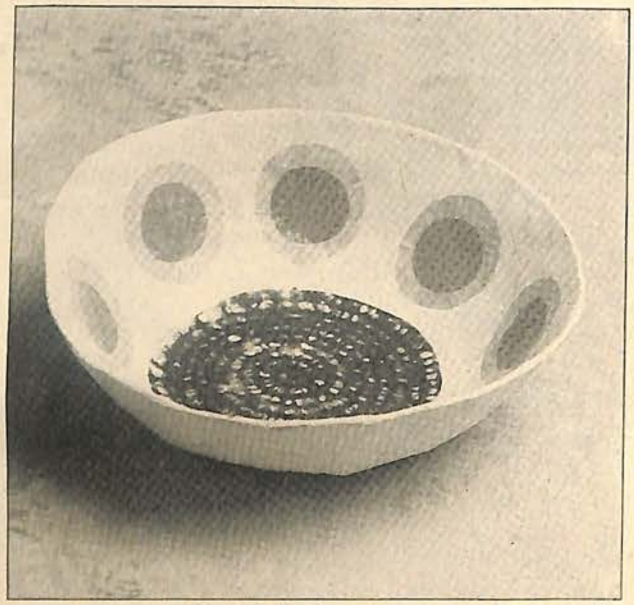


7. किनोर पतली हो तो उस पर काग़ज़ की एकाध परत और चढ़ा सकते हो।





8. हल्के से रेगमाल घिसकर कटोरे को चिकना कर लो।



9. अब इस पर खड़िया मिट्टी, गेरु, रामरज या जो तुम चाहो, पोत लो। कटोरे पर मनचाहा डिज़ाइन भी बना सकते हो।



विभिन्न देशों की मुद्रा

देश	मुद्रा	इकाई	लगभग रुपए के बराबर
आस्ट्रेलिया	डॉलर	1	20.00
बंगलादेश	टका	100	75.00
कनाडा	डॉलर	1	23.00
मिस्र	पौंड	1	8.00
फ्रांस	फ्रैंक	1	4.00
जर्मनी	मार्क	1	14.00
इटली	लीरा	100	2.00
जापान	येन	100	19.00
नेपाल	रुपया	1	0.60
पाकिस्तान	रुपया	1	1.00
श्रीलंका	रुपया	1	0.63
स्विट्ज़रलैंड	स्विस फ्रैंक	1	16.00
ब्रिटेन	पौंड	1	41.00
अमेरिका	डॉलर	1	26.00
सोवियत संघ	रूबल	1	30.00

विदेशी मुद्राओं के बराबर रूपए का यह मूल्य जुलाई, 91 में था। यह मूल्य घटता-बढ़ता रहता है।

रुपए का बदलता आधार

भारत में काग़ज़ी मुद्रा प्रणाली के पीछे अलग-अलग समय पर अलग- अलग आधार रहे हैं। यहां हम इनके बारे में बहुत थोड़ी चर्चा करेंगे।

1. प्रेसीडेंसी बैंकों द्वारा ज़ारी काग़जी मुद्रा

सन् 1806 में तथा उसके बाद जिन बैकों ने नोट जारी किए थे, उन्हें कुल जारी नोटों के मूल्य का एक चौथाई भाग धातु सिक्कों के रूप में जमा रखना पड़ता था। इसके अलावा यह सरकार तय करती थी कि बैंक अधिक से अधिक कितनी राशि के नोट जारी कर सकता है। यह प्रणाली 1861 तक जारी रही।

2. सरकार द्वारा जारी काग़जी मुद्रा

1861 में जब सरकार ने बैंकों से नोट जारी करने का अधिकार वापस ले लिया तो नई प्रणाली अपनाई।

इस प्रणाली के अंतर्गत 7 करोड़ रुपए तक के नोट विश्वास के आधार पर यानी सरकारी वचन (रुपया प्रतिभूति) पर जारी किए जाते थे। लेकिन इससे अधिक राशि का नोट जारी करने के लिए सरकार को सिक्कों, धातुओं तथा रुपया प्रतिभूतियों की शत प्रतिशत आड़ रखना अनिवार्य था। आगे चलकर विश्वास के आधार पर नोट जारी करने की सीमा 7 करोड़ से बढ़ाकर 20 करोड़ कर दी गई। 20 करोड़ के ऊपर जितनी भी मुद्रा जारी की जाती उसके पीछे शत-प्रतिशत धातु निधि रखना अनिवार्य था। धातु निधि में कुछ सोना भी होता था। यह प्रणाली 1934 तक जारी रही।

3. रिज़र्व बैंक द्वारा जारी काग़जी मुद्रा

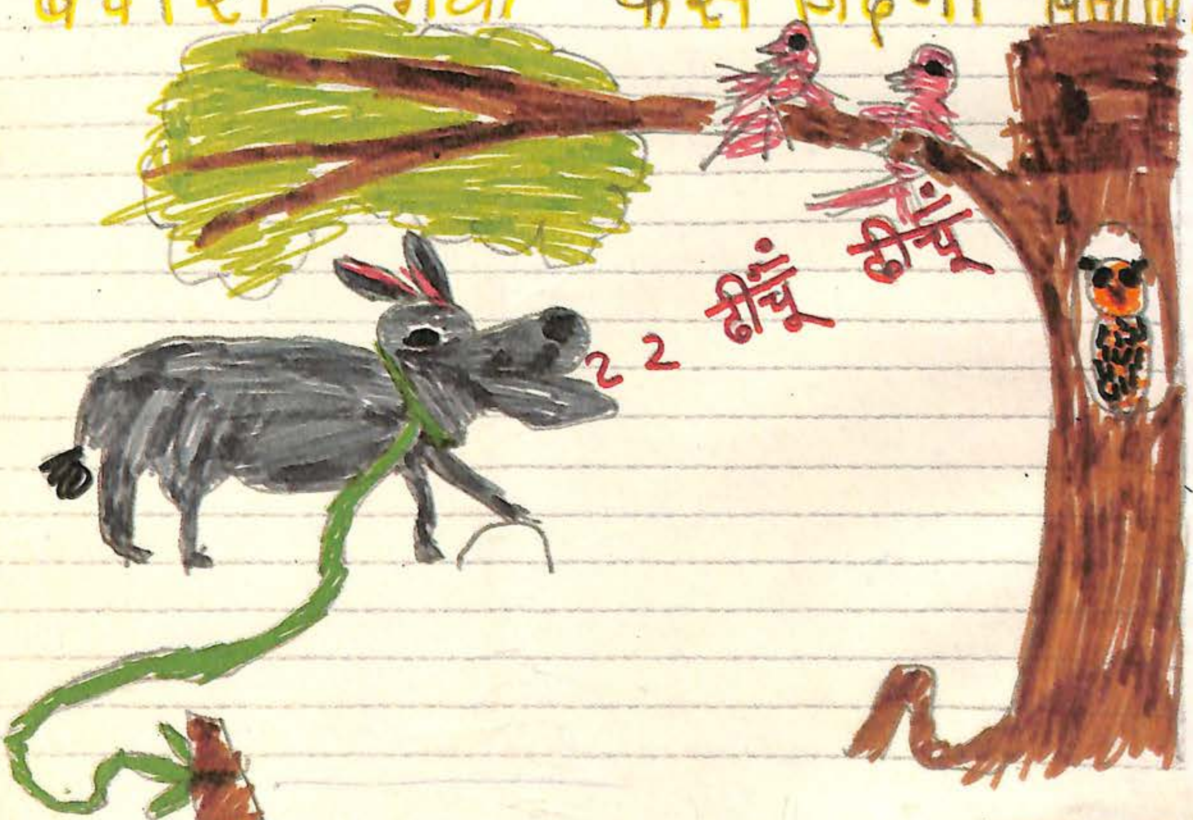
रिज़र्व बैंक ने 1935 में जब काम शुरु किया तो आनुपातिक कोष निधि प्रणाली अपनाई। इस प्रणाली में जितने रुपए के नोट जारी किए जाते, उनके कुल मूल्य का 40 प्रतिशत भाग सोने के सिक्कों, विदेशी, प्रतिभूतियों तथा विदेशी मुद्रा के रूप में रखा जाना अनिवार्य था। लेकिन यह शर्त भी थी कि कुल निधि में 40 करोड़ रुपयों का सोना या सोने के सिक्के होना चाहिए। और इस सोने का 17/20 भाग देश में ही रहना चाहिए।

काग़ज़ी मुद्रा के शेष 60 प्रतिशत भाग के पीछे भारत सरकार को अपनी प्रतिभूतियां, हुण्डियां, चांदी व चांदी के सिक्के रखना ज़रूरी था। इसमें यह शर्त भी थी कि भारत सरकार की प्रतिभूतियों की कुल क़ीमत काग़ज़ी मुद्रा निधि के 25 प्रतिशत या 50 करोड़ रुपए की क़ीमत से अधिक नहीं होनी चाहिए। यह प्रणाली 1956 तक जारी रही।

1956 में आनुपातिक कोष प्रणाली के स्थान पर न्यूनतम मुद्रा कोष प्रणाली अपनाई गई। इस प्रणाली के अंतर्गत कुल जारी काग़ज़ी मुद्रा के पीछे 400 करोड़ की विदेशी प्रतिभूतियां तथा 115 करोड़ रुपए का सोना या सोने के सिक्के रखना अनिवार्य था। बाद में यह व्यवस्था की गई कि सोना तथा विदेशी प्रतिभूतियां दोनों की कुल जमा-आड़ 200 करोड़ रुपए से कम नहीं होनी चाहिए। इसमें 115 करोड़ का सोना और शेष 85 करोड़ की विदेशी प्रतिभूतियां। आज भी यही प्रणाली जारी है।

बेचारा गधा

बेचारा गधा,
हरदम रहता खड़ा, खड़ा।
चिड़ियाँ चूँ, चूँ करकर गातीं
सबका मन बहलाती।
गधा भी सुनकर खुश हो जाता,
ढिचूँ ढिचूँ करता।
बेचारा गधा मालिक के लट्ठ खाता,
बेचारा गधा कैसे जिंदगी बिताता।



ईशान, सात वर्ष, दिल्ली

पंजीयन क्रमांक 50309/85 के अंतर्गत भारत के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत । डाक पंजीयन क्रमांक BPL/DN/MP/431/91



सौम्या सुरेश, दस वर्ष, भोपाल

रेक्स डी रोजारियो की ओर से विनोद रायना द्वारा राजकमल्स् ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल से मुद्रित एवं एकलव्य, ई-1/208, अरेरा कालोनी, भोपाल-462 016 से प्रकाशित
संपादक : विनोद रायना